मुद्रक
जे० के० शर्मा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद



पूज्य भाई साहबको—

जिनके

तापसी जीवनकी पूजामें

यह प्रथम वनवासी पुष्प

श्रद्धा सहित समर्पित

आपके ही

ब्रह्मदत्त

कृष्णा

अपनी बात

बनवासी वीरोंके बीच पूज्य भाई साहबके लगभग १५ वर्षके अनवरत तापसी जीवनकी साध ही इस पुस्तककी प्रेरणा है। हमारे देशमें बनवासी जातियोंकी संख्या लगभग तीन करोड़ है। ये पिछड़ी हुई जातियाँ हैं। स्वतन्त्र भारतके सामने यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि वह किस प्रकार इस पिछड़े हुए अंगको अपने साथ मिला सके और आजकी दुनियाकी तेज दौड़में अपनेको उतना ही गतिशील सिद्ध कर सके जितने कि संसारके अन्य प्रगतिशील देश हैं। खेद है हममेंसे अधिकांश इन जातियोंसे सर्वथा अपरिचित हैं। हमें आजतक इन लोगोंके जीवनका उतना भी ज्ञान नहीं है जितना कि दूर दूरकी विदेशी जातियों और संस्कृतियोंका है। जहाँ इन जातियोंके विषयमें यूरोपियन लेखकोंने खूब लिख रक्खा है और बहुत कुछ लिखा है जो इतने दूरके रहनेवाले रहे और यहाँकी भाषा, भाव, संस्कृति तथा स्थितिसे पहिले नितान्त अनभिज्ञ रहे वहाँ हमारी मातृभाषाओंमें इनके जीवनके विषयका अल्प साहित्य आपको न मिलेगा। आज भी जब हमारी भाषाओंका सर्वतोन्मुखी विकास हो रहा है तब भी इस विषयके ग्रन्थोंका एकदम अभाव है। प्रामाणिक ग्रन्थोंकी कौन कहे—परिचयात्मक पुस्तिकाओंका भी पता आपको न लगेगा। इस उद्देश्यके लिए ही यह परिचयात्मक पुस्तक जनताके सम्मुख उपस्थित की जा रही है।

हम यह कैसे सन्तोष करें कि इन जातियोंपर लिखी गई यह पुस्तक दोषरहित और पूर्ण है—यह तो पुस्तिका हो सकती है जिसे देखकर या सुनकर इस विषय और इस ज्ञानके अधिकारी लेखक और विद्वान इस ओर कुछ कार्य करनेका प्रयत्न करेंगे और हिन्दीके इस विषयके सूने क्षेत्रको भरापूरा बनावेंगे। दोषसहित होनेपर इस पुस्तिकाका उद्देश्य और भी सबल हो जाता है क्योंकि विद्वान और अधिकारी लोग शीघ्र इस ओर प्रेरित होंगे। हमारा केवलमात्र उद्देश्य यही है कि हिन्दीके नये, पुराने लेखक इस क्षेत्रमें उतरें और भारती भण्डारको पूर्ण करें।

इस अवसरपर हम श्रद्धेय आचार्य नरेन्द्रदेवजीके विशेष आभारी हैं—

जिन्होंने पुस्तककी भूमिका लिखकर हमारा नवीन उत्साह बढ़ाया है तथा अपने पूज्य गुरुवर प्रोफेसर राजारामजी शास्त्रीके विशेष कृतज्ञ हैं, जिनके स्नेह और प्रेरणासे हमें सदैव नवीन स्फूर्ति और उत्साह मिला है। इन गुरुजनोंके ऋणसे मुक्त होना हमारे लिए संभव नहीं है। संभवतः पिछले जन्मोंकी मित्रता और स्नेहके बिखरे तंतुओंको आकस्मिक आकर जोड़नेवाले श्रद्धेय मित्र श्रीवैजनाथसिंहजी 'विनोद' की सहायताके लिए क्या कहूँ—सिवा इसके कि यह पुस्तक ही उनकी सहायताकी मूर्ति रूप है। प्रकाशककी कृपाके लिए हम सदैव आभारी रहेंगे।

पाठक और आलोचक इस रचनाके सदोष स्थलोंके लिए क्षमा करें।

कमच्छा, काशी
२२-६-४७

ब्रह्मदत्त दीक्षित
कृष्णा दीक्षित

भूमिका

(श्री आचार्य नरेन्द्रदेव जी)

आज भारतवर्षके आदिवासियोंकी समस्या केवल मानवता या हिन्दुत्वकी समस्या नहीं रह गई है। देशकी स्वतन्त्रताके साथ अपने सर्वतोमुखी विकासके अवरुद्ध द्वारोंको खोलनेकी जिम्मेदारी उस पर अनिवार्यरूपसे आ पड़ी है। विना इस कर्त्तव्यका निर्वाह किए वह राष्ट्रोंके संघर्षमें अपनी स्वतन्त्रताको भी सम्हाल नहीं सकता है। आजके राजनैतिक कार्यक्रमका एक मुख्य अंग यह होना चाहिए कि सारे भारतीय समाजमें सचेत और स्थायी प्रजातंत्रके लिए ज़मीन तैयार की जाय और भारतीय समाजको वास्तविक एकता सम्पादित करनेके लिए उसके सभी अंगोंको एक सुदृढ़ व्यवस्थामें लाया जाय। इस दृष्टिसे आदिवासियोंको भारतीय समाजमें सजीव रूपसे सम्मिलित करनेका प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। इनमें एक सामंजस प्रजातंत्रकी ज़मीन तैयार करनेके लिए इन्हें भारतीय समाजके अन्य अंगोंके अनुकूल वनाना पड़ेगा। उनकी सभ्यता और संस्कृतिके अवरुद्ध विकासको इस प्रकार सम्पन्न करना पड़ेगा जिससे वे भारतीय समाजकी एकताका निर्माण कर सकें।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक धर्मावलंवी विभिन्न वनवासी जातियोंको आत्मसात् करनेकी चेष्टा करते रहे हैं। इन चेष्टाओंमें तत्तत् धर्मावलंवियोंकी ओरसे प्रयुक्त होनेवाले तर्क उनके ऐहिक स्वार्थोंके प्रभावसे सर्वथा मुक्त नहीं रहे हैं। श्री वैरियर एलविन जैसे कुछ शुद्ध वैज्ञानक कार्यकर्ताओंने अवश्य यह कहा है कि इन आदिवासियोंका स्वाभाविक विकास हिन्दूसमाजमें होना चाहिए क्योंकि ये ही इस जातिके वे वीज हैं जिनसे आगे चलकर हिन्दू धर्मका विकास हुआ। किन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि उन्हें एकाएक कृत्रिम रूपसे हिन्दू वना लिया जाय। वास्तवमें हमारे लिए इन धर्मोंका आग्रह छोड़कर विशेष विशेष आदिवासियोंके धर्मोंको ही विकसित करना अधिक समीचीन होगा और यह काम उनकी भाषा और संस्कृतिके

माध्यमसे मानव विज्ञान द्वारा अर्जित अन्य जातियोंके अनुभवके प्रकाशमें होना चाहिए। इस शुद्ध वैज्ञानिक प्रणालीका अनुकरण करते हुए हमें यह तो विकासकी स्वाभाविक गतिपर ही छोड़ देना चाहिए कि ये जातियाँ किस मार्गसे अन्तिम लक्ष्यकी ओर अग्रसर होती हैं; क्योंकि हमारा वास्तविक उद्देश्य तो सारे भारतीय समाजकी एकता है।

इस सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यके अतिरिक्त हमारी आर्थिक व्यवस्थाकी एकता भी आदिवासियोंके प्रश्नको महत्व प्रदान करती है। भारतवर्षको संसारकी प्रतियोगितामें अपने सारे आर्थिक साधनोंको उन्नत करना होगा। इस दृष्टिसे जंगलोंके उपयोगका महत्व बढ़ जाता है। देशके जंगली भूखंडमें खनिज द्रव्योंके अन्वेषणकी सम्भावनाओंकी भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इस दृष्टिसे हमें जंगलों और वनवासियोंके सम्पर्कमें आना पड़ेगा। जंगलोंमें हमें जो कार्य करना होगा उसमें ये वनवासी जिन्हें जंगलोंका दीर्घकालीन ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त है और जो उनमें रहनेके अभ्यासी हैं, हमारे सहज सहायक होते हैं। किन्तु अपने जंगलोंमें जिसके वे अबतक स्वामी रहे हैं या अपनी जीवन प्रणालीमें हस्तक्षेप होते देखकर उनमें हमारे उद्देश्योंके प्रति भ्रान्ति भी हो सकती है इस दशामें वे हमारे सहायक न होकर बाधक हो सकते हैं। इसलिए उनके साथ हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध तथा परस्पर विचारों और भावनाओंका आदान प्रदान होना आवश्यक है; जिससे हम पारस्परिक हितके लिए सहयोग कर सकें इसलिए भी वनवासी जातियोंके जीवन तथा उनकी भाषा तथा संस्कृतिके अध्ययनकी तात्कालिक आवश्यकता है।

आधुनिक विकासकी ओर वनवासियोंको निर्भ्रान्त रूपसे अग्रसर करनेके लिए अकृत्रिम सहज विकासकी प्रणाली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सामग्री नई होगी किन्तु वर्त्तन उन्हींके होने चाहिए। कृत्रिम रूपसे दूसरेकी भाषाएँ उनपर लादनेसे दुष्परिणाम ही होनेकी आशंका है। इस प्रकारके कृत्रिम 'मानवीकरण' से घबड़ा कर कुछ नृतत्त्व वेत्ताओंने अनेक वनवासियोंके जीवनमें जो अबतक 'सभ्यता' से सर्वथा असंपृक्त रहे हैं, हस्तक्षेप न करनेकी सलाह दी है। इस सलाहमें मानव वैज्ञानिकोंका व्यावसायिक स्वार्थ भी बताया जाता है। कहा जाता है कि वे अपने अध्ययनके लिए मानव सभ्यताके विकासकी प्रत्येक अवस्थाका उदाहरण सुरक्षित रखनेके स्वार्थपर बहुधा आदिम जातियोंके विकासका बलिदान कर देना चाहते

हैं । जो हो—हम इस सलाहका समर्थन नहीं कर सकते हैं । हां, कृत्रिम विकासके अनिष्ट परिणामोंसे वचना आवश्यक है । अध्ययनके स्वार्थकी पूर्ति तो उक्त जातियोंके जीवनको पूर्णत: लेखवद्ध कर लेनेसे भी हो सकती है । और यह कार्य तो उनके जीवनके विकसित करनेके कार्यक्रमका आवश्यक अंग ही है । इस प्रकारके अध्ययनका भी महत्त्व कम नहीं है। इससे हमारे इतिहासकी वहुत-सी टूटी कड़ियोंका पता चलता है। आज कल ऐतिहासिक अन्वेषणकी अनेक रीतियोंमें उन समाजोंके तुलनात्मक अध्ययनकी भी एक सिद्धि रीति है, जो आज भी सभ्यताके विभिन्न स्तरोंपर पाए जाते हैं । इससे सभी समाजोंके विकासकी संभावित मंज़िलों-का एक क्रम प्राप्त होता है ।

भारतीय आदिवासियोंमें भी इस प्रकारके अनेक स्तर दिखाई देते हैं । कुछ पहाड़ी जातियां या समुदाय जिनके जीविकोपार्जनके साधन अत्यन्त आदिम प्रतीत होते हैं, एक प्रकारकी आदिम सामूहिक व्यवस्थामें निवास करते हैं। उनके ग्रामोंकी वनावट ही इसका साक्षी है । एक ही सम्मिलित चौकके चारों ओर लम्वे लम्वे मकान वनाये जाते हैं जिनके द्वार एक दूसरेके सामने खुलते हैं । उनके सार्वजनिक ग्राम गोष्ठी उनके सामाजिक जीवनके अविच्छेद्य अंग हैं। इनके अनाजके ढेर सामूहिक सम्पत्ति होते हैं। कुछ जातियोंमें अमीर-गरीवका भेद कम हो चुका है । किन्तु कछ जातियोंमें ग्रामकी एकताकी रक्षाके लिए सव वरावर कर देते हैं और कुछ जातियोंमें करदाता ग्राम होता है न कि व्यक्ति । गरीव व्यक्तियोंके लिए ग्रामके गोष्ठी-गृहमें अनाज संचित रहता है । जमीनकी मिल्कियत सामूहिक होती है और कुदालकी खेतीके लिए जंगल साफ की गई जमीन सम्मिलित स्वीकृतिसे वाँटी जाती है । जिस किसी व्यक्तिकी फ़सल कभी खराव हो जाती है तो उसे दूसरे साल सवसे अधिक जमीन दी जाती है । ये लोग जंगलका कुछ हिस्सा काटकर गिरे हुए पेड़ोंमें आग लगा देते हैं और उनकी राखमें वीज वो देते हैं। ज़मीन या तो खोदते ही नहीं या लकड़ी अथवा खुरपीसे थोड़ा वहुत खोद देते हैं। दो तीन वर्ष इस ज़मीनमें अनाज उपजानेके वाद उसे छोड़ कर जंगलके दूसरे हिस्सेको इसी भांति साफ़ कर लेते हैं। दूसरे स्तरकी जातियोंमें ग्राम जीवन व्यक्तिगत हो चला है। ये अपने मकान अलग अलग अहातोंमें वनाते हैं। किंतु कुछ जातियोंमें ग्राम गोष्ठीगृह उनके विगत सामूहिक परम्पराके अवशेष रह गये हैं। इनमें प्रतियोगिताकी भावना आ गई है। उपयोग सामूहिक नहीं रह गया है।

ज़मीन सम्मिलित स्वीकृतिसे ही बंटती है। किन्तु अन्य वस्तुएँ निजी सम्पत्ति मानी जाने लगी हैं। लकड़ीसे ज़मीन खोदना उनकी दृष्टिमें अत्यन्त प्रारम्भिक तरीक़ा हो गया है और हल तथा पशुओंका भी प्रयोग होने लगा है, लोग बाज़ारों-में भी जाने लगे हैं।

इनके पश्चात् वे जातियां हैं जो सभ्यताके आक्रमणके फलस्वरूप अपनी सामूहिक संस्कृति और व्यवस्थाको छोड़ चुकी हैं किन्तु सभ्यताके साथ इनका सामंजस्य नहीं हो पाया है। ये लोग संक्रान्तिकालके संकटसे गुजर रहे हैं। इनकी आर्थिक व्यवस्था टूट गई है और इनके चरित्रका भी पतन हुआ है। अन्तिम स्तरके वे निवासी हैं जिनका सभ्यताके साथ सामंजस्य स्थापित हो चुका है। इनमें कुछ धनी ज़मींदार और रईस हैं जिनके आदिम जीवनके अवशेष इनके कुछ धार्मिक रीति रिवाजोंमें ही रह गये हैं अन्यथा वे पूर्णतया हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं और सर्वथा आधुनिक तथा यूरोपीय जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु इन थोड़ेसे शिक्षित और सुसंस्कृत लोगोंके अतिरिक्त अधिकांश जनता ग़रीब और अशिक्षित है।

जो जातियाँ आधुनिक सभ्यतामें पदार्पण कर रही हैं और अभी संक्रान्ति कालसे गुज़र रही हैं उनकी कठिनाइयोंका सर्व सम्मत कारण यही है कि उनका विकास सहजरूपसे न होकर सभ्यताके आकस्मिक आक्रमणके द्वारा हुआ। अतएव हमें इस मार्गको त्याग कर सहज रूपसे बनवासियोंकी संस्कृति और विकास तथा उनके साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान करना होगा जिसके लिए उनके जीवन-का अध्ययन प्रारंभिक आवश्यकता है। हर्षका विषय है कि अनेक सार्वजनिक संस्थाओं तथा कार्यकर्त्ताओंका इस ओर ध्यान गया है। हमें आशा है कि कांग्रेसी सरकारें ऐसे प्रयासोंको प्रोत्साहन देंगी और उनके निमित्त पर्याप्त आर्थिक सहा-यता प्रदान करेंगी।

श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित तथा उनकी धर्मपत्नीने इस प्रस्तुत पुस्तकमें संक्षिप्त तथा सरल रूपसे भारतके बनवासी जातियोंके जीवनका सुन्दर चित्रण करके एक प्रारम्भिक आवश्यकताकी पूर्ति की है। हिन्दीमें ऐसे साहित्यका तो एकदम अभाव है। उनका यह सत्प्रयास सराहनीय है और इस कार्यको आगे बढ़ानेके लिए एक नवीन प्रेरणा है।

काशी विद्यापीठ
२३–६–४७

—नरेन्द्रदेव

विषय-सूची

चित्र-सूची

१-प्रसिद्ध बनवासी वीर—भील

[यह वीर सैनिक जाति खानदेश, गुजरात, मध्यभारत, राजस्थान तथा इन्दौर, झाबुआ, कुशलगढ़, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, सैलाना, रतलाम, धार, ग्वालियर, अलीराजपुर, जोबट आदि रियासतोंमें निवास करती है। अधिकांश सघन जंगल और ऊँचे नीचे डूँगर ही इसके आश्रयस्थल हैं। इनकी संख्या लगभग २५ और ३० लाखके बीच है। मध्यकालीन राजपूतोंके विजय वैभवमें इस जातिके ऐतिहासिक अमरकृत्य बीजरूपमें अन्तर्निहित हैं।]

"देशकी सभी रियासतों, प्रगतिशील सम्प्रदाय और जातियोंसे भील विशेष संरक्षणके पात्र हैं। यह कोई अहसान नहीं वरन् यह सरक्षण उनका मौलिक अधिकार है। सचमुच भील बड़ा ही भली कौम है।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू

हमारा आजका जीवन स्वातंत्र्य भावनाओंसे ओतप्रोत हो रहा है। यदि हम भारतकी इन भावनाओंके उद्गम स्थानकी खोज करने निकलें तो हमें बहुत दूर जा कर एक ऐसा पथरीला वनखण्ड किन्तु दृढ़ स्थान मिलेगा, जहाँकी भूमिके कण-कणने एक वार हमारी स्वतंत्रताकी सोती हुई भावनाको जगा दिया था। चित्तौड़के अमर दुर्गपर फहराती और चमकती हुई स्वाधीनताकी पताकाओंकी स्मृति आज भी हमारे लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ! जिन वली और कर्मठ करोंने इन पताकाओंको फहराया था वे कतिपय सामन्त सर्दार राजपूत ही न थे, वरन् उनके पीछे और उनके ऐसे संकटतम कालमें दृढ़ स्तम्भ एक विशाल जन समूह ऐसा था, जिसे हमने भीलकी संज्ञा दे रक्खी थी। यदि सच पूछा जावे तो स्वाधीनता सूर्य राणा प्रताप के जनता-जनार्दन ये ही लोग थे, जिन्होंने उस युगमें स्वतंत्रता संदेशको अमर वनाया जव कि भारतका कोना कोना मुगल साम्राज्यान्तर्गत हो रहा था—न मालूम कितनी आन शान वाली जातियोंके सम्मान सूर्य अस्त हो चुके थे, कितनों ही ने दासताकी जंजीरोंका हताश हो हो कर स्वागत किया था और अपनी मानवीय जान दे कर पार्थिव जान वचा रहे थे, माताओं और वहिनोंके सुहाग

धड़ाधड़ विकते जा रहे थे—"तव हम (भीलों) ने गर्दनें कटाईं पर झुकाई नहीं, जानें गँवाईं पर वेंची नहीं और अपनी जन्मभूमि मेवाड़की एक एक इंच भूमिके लिए न जाने कितना रक्त न्यौछावर किया था।" उनका वह देशप्रेम चाहे आजके दृष्टिकोणमें भले ही प्रादेशिक और सीमिति प्रतीत होता हो, किन्तु उनके रक्त-प्रवाहकी कीमत तो कम नहीं होती है—उद्देश्यके लिए मर मिट जानेकी उनकी उत्कट चाहमें तो कोई कमी नहीं थी—आज भी इतने दीन हीन होकर भी अपनी चप्पा चप्पा भूमि पर मर मिटनेकी साध उनमें है। आज भी सैनिक भारतको आगे वढ़ानेकी चाह उनके कलेजेको उछाल रही है। उनके परम्परागत सैनिक महत्वको कोई पहिचाने तो !

वास्तवमें भीलोंका प्राचीन इतिहास वेजोड़ वीरता और कुर्वानीसे भरा पड़ा है, परन्तु गुलामीकी गोदमें सोई हुई ज्ञान शून्य जनताने अपने इस प्रवल अंगको उदासीनताकी गहरी खाईमें सड़ने दिया है। इन भीलोंकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति, हीनताकी इस हद तक पहुँच गई है कि वे अन्न-वस्त्रसे लाचार हो कर अपना जातिगत स्वाभिमान भी भूल वैठे हैं। कड़कड़ाती ठंड, भयंकर गर्मी और वर्षामें नंगे वदन, जंगलोंमें टूटे फूटे झोंपड़ोंमें लंगोटी लगाकर रहने पर भी न इनका जीवन सुरक्षित है न इज्जत। तन ढकनेके लिए कपड़े; पापी पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए अन्नके दाने दानेको ये तरसते हैं। ये कमाते हैं, परिश्रमी हैं, खेती भी करते हैं; पर इनके अज्ञानका लाभ राज्यके शासक और छोटे से छोटे कर्मचारी तथा सूदखोर व्यापारी इस निर्दयतासे उठाते हैं कि वे वेचारे लाखों लोग भिखमंगोंकी भांति अपना जीवन विताते हुए अकाल ही काल कवलित होते रहते हैं।

भील जातिके इतिहासकी प्राचीनतामें किसीको भी संदेह नहीं है। हमारे संस्कृत साहित्यमें इनका खूव नाम आया है। रामायण कालसे लेकर भास आदिके नाटकों, कथासरित्सागर तथा अन्य ग्रन्थोंमें वरावर इनकी शृंखला जुड़ी हुई ज्ञात होती है। अतः कतिपय यूरोपीय विद्वानोंका यह कहना कि यह जाति शक और सीदियनोंकी मिली हुई एक नवीन जाति है, नितान्त अशुद्ध है। हाँ रक्त-मिश्रण हो सकता है, जो कि संसारकी प्रत्येक जातिमें कभी न कभी हुआ ही है और होता ही रहता है। संभवतः संसारमें विशुद्धतम शत प्रतिशत एक ही रक्त वाली जातिका तो आज मिलना असंभव है। हमारे साहित्यमें जहाँ कहीं भी

इनका वर्णन आया है उससे पता चलता है कि ये लोग सदैव से ही वनाद्रिवासी रहे हैं। अतएव वनैले जीवनके गुण इनमें आज भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। ज्ञात ऐसा होता है कि अपने वीरोचित कार्योंसे राजपूतोंके संकटके युगमें ये लोग राजपूतोंके अधिक समीप आए और इन्हें सामाजिक तथा राजनैतिक जीवनमें ऊँचा उठनेका अवसर मिला। हम स्पष्ट देखते हैं कि उदयपुर, वासवाड़ा, झाबुआ, कुशलगढ़ आदि कई रियासतोंमें राजाओंके राजतिलक करनेका अधिकार आज तक भीलोंको ही प्राप्त है। चित्तौड़के राजकुलमें श्यामा आदि भील महिलाओंका सम्मान रानी और महारानी जैसा ही था। किशनगढ़, फतेहगढ़, वादनवाड़ाके ठाकुर आदिके राजवंश अजमेरके भूमिया लोगोंमें से ही हैं। उग्रिया, पनुरवा जावरा, जवास (मेवाड़) के सर्दार भूमिया वंशज हैं। इनका मेवाड़के राणाके यहाँ सम्मानपूर्ण पद है। परमार, सोलंकी, चौहान, गहरवाल, राठौर, गहलोत आदि गोत्र भीलोंके वहुत ही प्रचलित गोत्र हैं। किसी समय मध्यभारतमें भीलोंके छोटे छोटे राज्य थे, किन्तु समयके फेरने इन्हें उस रूपमें न रहने दिया। ये भील जिन राजपूतोंसे आवृत थे, उन्होंने इन्हें दुर्वल बनाया और समाजमें इनको समान अधिकारी न रक्खा। इधर मरहठा सर्दारोंने आकर इन्हें और तंग किया। चारों ओरकी दुःखप्रद परिस्थितियोंमें फँस कर इन्होंने पुनः घने जंगलों और पहाड़ियोंमें आश्रय लिया जो कि वहादुर सैनिकोंके लिए सदैव ही आश्रय देनवाले प्राकृतिक विश्राम गृह होते हैं। कुछ लोग इस राजस्थानी भूमिको छोड़कर गुजरात और खानदेशकी ओर निकल गये और वहाँकी भूमिकी प्रजा वन गये। इस दैन्य अवस्थामें रहते हुए भी इन्हें आज सैकड़ों वर्ष हो गये हैं।

यह जाति आजकल खानदेश, गुजरात, मध्यभारत और मेवाड़, राजस्थान तथा इन्दौर, झाबुआ, कुशलगढ़, वाँसवाड़ा, परतापगढ, सैलाना, रतलाम, धार, ग्वालियर, अलीराजपुर, जोवट आदि रियासतोंमें निवास करती है। मध्यभारत और राजपूतानेमें तो लगभग ६० फ़ीसदी वस्ती भीलोंकी है। पहाड़ी और ऊँची उठी हुई भूमिको ये लोग डूंगर कहते हैं अतः कभी कभी यह प्रान्त डूंगर प्रान्त भी कहा जाता है। इस प्रान्तमें वर्षा वहुत कम होती है अतएव कृपिमें इतना अनाज उत्पन्न नहीं होता है कि भील परिवार पूरे वर्प अपना कार्य चला सकें इसलिए इन्हें अन्य अनेक परिश्रमपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। भील शरीरसे यद्यपि दुवले होते हैं, किन्तु वड़े मज़वूत होते हैं। साधारण वुखारमें जव हम खाट खोजते

फिरते हैं तव भील बुखारके पूरे जोशमें अपनी पीठपर ५–१० सेर गीली मिट्टी थोपे हुए कड़कती धूपमें दिन दिन भर हल हाँकता है और इस प्रकार अपने बुखारकी तेजीको शिथिल करता है। एक लँगोटी पहिने खुले मैदानमें वृक्षके नाम मात्र सहारेसे ही कड़कड़ाती ठंडी रातें व्यतीत कर सकता है। कई दिनोंतक विना खाए पिए लगातार परिश्रम करनेके पश्चात् केवल मक्काके आटेको पानीमें उवाल और उसे ही पीकर पुराने परिश्रम और भूखकी पीड़ाको भूल जाता है। सूर्यदेवकी सीधी कृपामें रहनेके आदी होनेके कारण इनका रंग काला अवश्य होता है किन्तु हब्शी जैसा नहीं। वस्त्र इनके पास कहाँ—अधिकतर जंगलोंमें रहनेवाले व्यक्ति तो केवल मात्र एक लँगोटीसे ही पुश्त दर पुश्त व्यतीत करते हैं, किन्तु जो भील परिवार खेती करते हैं और वड़ी वड़ी वस्तियोंके किनारे आकर वस जाते हैं, वे लोग नगरोंसे मोटा मोटा कपड़ा लाकर पहिनते हैं—जिस कपड़ेके लिए न मालूम सूदखोर वनियोंको इन्हें कितना मूल्य चुकाना पड़ता है और कितने दिनोंतक उनकी तावेदारी करनी पड़ती है। स्त्रियाँ अधिकांश लाल रंगके लहँगे पहिनती हैं और ओढ़नी भी ओढ़ती हैं। गिलट और पीतलके आभूषण पैरोंमें पहिनती हैं—चाँदीके आभूषण तो किसी किसी भाग्यशाली भील परिवारको ही उपलब्ध हो पाते हैं। स्त्रियाँ वड़ी परिश्रमी होती हैं। रातदिन मशीनकी भाँति काम करती हैं। इन्हें गोदना गुदानेका भी शौक होता है। घर वाहरके सभी कार्योंमें ये पुरुषोंका हाथ वँटाती हैं।

भीलोंके घर घास फूँसकी झोपड़ियाँ होती हैं। जहाँ जहाँपर इन्होंने खेती करना प्रारम्भ कर दिया है और व्यवस्थित रूपसे वस गये हैं, वहाँ इन झोपड़ियोंके घर अधिक सुन्दर दिखाई देते हैं, अन्यथा घोर जंगलमें तो आज भी ये लोग भ्रमणशील प्राणी हैं। वर्षाऋतुमें ये अवश्य एक स्थानपर टिक जाते हैं, किन्तु उसके पश्चात् खाने पीनेके चक्करमें तथा मेहनत मजदूरीकी खोजमें निकलकर इधर उधर घूमते हैं। पेटकी ज्वालासे अशान्त रहनेपर चोरी डकैती भी कर लिया करते हैं, जो भूखे प्राणीका स्वाभाविक कृत्य है। इनका मुख्य भोजन मकई है जिसे वर्षा ऋतुमें ये लोग पैदा कर लेते हैं। इसीकी रोटी और दलिया (थूली) वनाकर खाते हैं। रोटी भी इनकी वड़ी मोटी होती है। रोटी और नमकका एक टुकड़ा और पानी इन्हें न मालूम कितना सन्तोप प्रदान कर देता है। कभी कभी इन्हें सामाके (समां) दर्शन हो जाते हैं। सूखा और कड़ा भोजन कभी

कभी दुर्बल अवस्थामें इनके पेटमें आंटियाँ पैदा कर देता है और दो दो दिनतक भूख नहीं लगती है। कभी कभी ये लोग वृक्ष विशेषकी छालकी रोटी भी बना लेते हैं, जो पकनेपर पके हुए चमड़े जैसी चीठी हो जाती है और अनेक रोगोंको जन्म देती है, जिसके ये और इनकी सन्तति आजीवन शिकार रहते हैं। ये लोग मांसाहारी भी हैं। गाय और नीलगायको छोड़कर प्रत्येकका मांस समय पड़नेपर खा जाते हैं। भुखमरे प्रदेशके वासी होनेके कारण ये लोग मरे हुए जानवरोंका सड़ा मांस भी खा जाते हैं, जिससे सैकड़ों रोग फैलते हैं। ऐसा भूखकी विवशतावश तथा अज्ञानवश ही होता है। ये लोग तम्वाकू और देशी मद्यका पान वहुत करते हैं। महीनोंके कठिन परिश्रमकी कमाई—पहिले तो होती ही थोड़ी है—को एक दो दिनके मद्य पानमें स्वाहा कर देते हैं और दूसरे दिनसे फिर महाजनके क्रीतदास वन जाते हैं। ऐसे उदाहरण एक दो नहीं वीसियों देखे गये हैं जव इन्होंने अपने मद्यपानके व्यसनमें अपने छोटे छोटे प्यारे शिशुओं तकको चन्द रुपयोंमें विधर्मियोंके हाथ वेच दिया है। इनमें महान् अज्ञानताका राज्य है। इनका मुख्य उद्यम एक फसली खेती करना, जंगलसे लकड़ी काटकर लाकर वेचना तथा अन्य जंगली वस्तुओंका क्रय-विक्रय करना, शिकार करना, तथा वर्षके अधिक दिनोंमें मज़दूरी करना ही है। जहाँ जहाँपर ये लोग व्यवस्थित रूपसे कृषि करने लगे हैं, वहाँ निश्चित रूपसे कुछ सुखी हैं।

दरिद्रता और अज्ञानका घोर नर्क इनकी वस्तियोंमें देखा जा सकता है। अपने निजी अनुभवपर एक घटना यहाँ उद्धृत कर देना असंगत न होगा। मेवाड़ (उदयपुर) राज्यमें जयसमुद्र नामक एक झील है, जो उदयपुरसे काफी दूर है। इसका रास्ता भयावना और सघन जंगलोंसे आच्छादित है। वीच वीचमें छोटी छोटी भील वस्तियाँ पड़ती हैं। एक वार वहाँ एक भील वस्तीमें जहाँ कुछ भील वैठे हुए थे—जानेका अवसर हुआ। उनसे वातचीतके सिलसिलेमें एक भीलने वड़े आश्चर्यसे कहा—"हमें तो सालभरमें एक दो वार गुड़ खानेको वड़े ही भाग्यसे और हमारे सरकारकी अपार दयासे मिल जाता है, किन्तु हमारे महाराणा तो शायद रोज़ ही गुड़ खाते होंगे उनका कितना वड़ा भाग्य है।" कितना आश्चर्य होता है इस अज्ञान और दरिद्रताको देखकर ?

घने जंगलोंमें रहती हुई यह वहादुर जाति अपने अस्त्रशस्त्रोंके वलपर ही जंगलोंके भयंकर जानवरोंको अपना या तो मित्र वनाए हुए है या उन्हें अधिकृत

बनाए हुए हैं। महाभारत युगके अर्जुनीय वाण आज भी घने जंगलोंमें यत्र-तत्र टंकारते हुए और हिंसक जन्तुओंके हृदय विदीर्ण करते हुए सुनाई पड़ते हैं। भीलोंके छोटे छोटे वच्चे और महिलाएँ तक बातकी बातमें जंगलके राजा शेरको अपने तेज़ तीरोंका निशाना बना देते हैं और निर्भय होकर विचरते हैं। आज भी इन बच्चोंमें समुचित शारीरिक वल न होनेपर भी एकलव्य और भरत जैसे बालकोंकी स्फूर्ति और उत्साह तथा अपनी इस कलाकी एकनिष्ठा देखी जा सकती है। कभी लेटकर, कभी बैठकर, कभी दौड़कर ये जिस प्रकार वाण संधान किया करते हैं उसे देखकर आश्चर्य होता है। ये लोग वाणों और धनुषोंको स्वयं बनाते हैं और उसे पवित्र वस्तु समभकर सदैव अपने पास रखते हैं। जिन लोगोंका जंगल-का घोर जीवन छूट गया है, उनमें भी निर्भयता और स्वाभिमानका गुण ज्योंका त्यों विद्यमान है। भील वड़ा बहादुर और स्वाभिमानी होता है। प्रतापगढ़ आदि रियासतोंके भील तो इतने निडर और स्वाभिमानी होते हैं कि आए दिन राज्याधिकारियोंसे उनके संघर्ष होते रहते हैं। स्त्रीके प्रति किए गये किसी भी अत्याचारको वे सहन नहीं कर सकते हैं। निर्भय हो अकेले ही पुलिस और फौजके दस्तोंको पहाड़ियोंमें छकाते छकाते परेशान कर देते हैं। अपनेको स्वस्थ अवस्थामें गिरफ्तार नहीं होने देते हैं। ये क्षत्रियोचित गुण उनकी पुरानी विरासत है, जिसको उन्होंने अक्षुण्ण रक्खा है।

भील जाति कई उपजातियोंमें वँटी हुई है। एक जाति उसी गोत्रमें विवाह सम्वन्ध नहीं करती है। विवाह इनमें प्रौढ़ अवस्थामें होते हैं। सम्वन्ध तै करनेका भार माता पितापर होता है। वर पक्षके लोग कन्या पक्षवालोंके यहाँ सगाई तै करने जाते हैं। सगाई तै हो जानेपर वर वधू दोनोंके यहाँ उनका उवटन आदि होता है। उन्हें अपने अपने यहाँ कन्धेपर चढ़ाकर जुलूस निकाला जाता है, जिसमें सभी परिवारके लोग एकत्रित होते हैं। इस समय वर और वधूको मौन धारण करना पड़ता है। दोनों ओरकी इस तैयारीको "वाना वैठना" कहते हैं। निश्चित तिथिको वर वरात सहित जाता है और मंडप (जो या तो शमीके वृक्षका वनता है या बाँसके लट्ठोंका) की वर वधूको परिक्रमा करनी होती है। गाँठ-वन्धन होता है तथा अँगूठियोंका आदान प्रदान होता है। पंडित द्वारा एक हवन होता है और पश्चात् विवाह समाप्त माना जाता है। इस अवसरपर वर वधू खूब सजाए जाते हैं और वे सबके लिए आकर्षणकी वस्तु बनाए जाते हैं। इस अवसरपर ये लोग लाल

और श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इस प्रथाके अतिरिक्त कहीं कहीं "गोल गाधेडो" प्रथाका भी प्रचलन है। एक मजबूत लट्ठा गाड़ दिया जाता है, उसके सिरेपर नारियलका फल और गुड़ बाँध देते हैं। युवक युवतियाँ उसके चारों ओर नृत्य करती हैं। स्त्रियाँ गोला बनाकर लट्ठेके आस पास नाचती हैं, पुरुष बाहरसे नाचता हुआ अन्दरके वृक्षके पास जा कर उस लट्ठेका फल लेनेका प्रयास करता है। स्त्रियाँ ऐसा करनेसे उसे रोकती हैं। इस संघर्षमें कभी कभी खून खराबी तककी नौबत आ जाती है। जो नवयुवक घुसना चाहता है वह स्त्रियों द्वारा बहुत पिटता है। यदि साहसपूर्वक नवयुवक नारियलको तोड़ सका और गुड़ खा सका तो वह कठिन शौर्यपरीक्षामें सफल माना जाता है और उसे आज़ादी होती है कि किसी भी नवयुवतीसे विवाह कर ले। ऐसे शौर्य दिखाकर किए जाने-वाले विवाह बड़े सम्मानित माने जाते हैं और ऐसी स्त्रीको अपने पतिपर बड़ा अभिमान होता है। ऐसे विवाह कम संख्यामें ही होते हैं। भीलोंमें पतिकी मृत्यु या तलाक़ होनेपर पुनर्विवाहकी प्रथा भी है। भील बड़े ही विनोदी होते हैं। नृत्यके बहुत शौक़ीन होते हैं। उत्सवों और विवाहोंपर नृत्यका साज सजता है और मद्यपान करके खूब नाचते गाते हैं। इनका नृत्य बड़ा ही भावुक और आनन्ददायक होता है। इनका गौरी नृत्य अधिक प्रसिद्ध है।

*गौरी नृत्यका कथानक भगवान् शिवकी कथासे सम्बन्ध रखता है। यह नृत्य प्रायः भादोंकी पूर्णिमाके पश्चात् प्रारम्भ होता है और लगभग एक माहतक चलता है। इस नृत्यका प्रधान 'भोपा' कहलाता है। यही भोपा अपनेको भैरवका प्रतीक मानता है। वह अपने अन्य अभिनेताओंके साथ हाथमें त्रिशूल कमर और पैरमें घुंघरू बाँधकर काँसेकी थालीके बाजेके साथ नृत्य आरम्भ करता है। इस नृत्यके साथ ही साथ अन्य प्रहसन तथा खेल प्रारम्भ होते हैं। इन खेलों-का सूत्रधार 'कुटकड़िया' कहलाता है। इस नृत्यके बीच बीचमें कितने ही खेल तथा प्रहसन आते रहते हैं जो नृत्यकी मनोरंजकताको बढ़ाते हैं। इनका 'बनजारा' नृत्य बड़ा ही कलात्मक होता है। 'सिंह' नृत्य जो प्रायः सबसे बादमें होता है बड़ा ही भयंकर ज्ञात होता है। इसे शिवका असली ताण्डव नृत्य समझना चाहिए।

---

*देवी लाल सायर लिखित एक लेख—शोध पत्रिका उदयपुर भाग १ अंक ६ आषाढ़ २००४ वि०

इनके सामूहिक नृत्यका समा देखने योग्य होता है। गौरी नृत्यका प्रचलन अधिकांशतः मेवाड़के भीलोंमें ही अधिक पाया जाता है।

भील लोग देवी देवताओंको वहुत पूजते हैं। ये लोग महादेवके अनन्य भक्त होते हैं। शिव पूजाका प्रचलन इनमें वहुत है। उपासना और रोगोंके निवारण हेतु वे पहाड़ियों और जंगलोंमें आग लगा देते हैं, जिससे वहाँके जानवर मरकर वलि हो जावें और माता प्रसन्न हो जावें। भोपानामक भील मंत्र जंत्रसे इन रोगोंको दूर करता है ऐसा इनका विकट विश्वास है। ये लोग जादू टोनोंमें खूब विश्वास करते हैं और शकुन अपशकुनका वहुत ध्यान रखते हैं। मुर्दोंको ये लोग जलाते हैं। प्रेतोंमें विश्वास करते हैं। मरे हुए प्रसिद्ध व्यक्तियोंका पत्थरका स्मारक वनाते हैं। अधिकांश रूपसे इनमें हिन्दू गाथाएँ और प्रथाएँ प्रचलित हैं। भयंकर रोग आ जानेपर गाँवके गाँव खाली कर देते हैं। अधिकांश रोग तो इनके मैले कुचैले रहने, सड़ा मांस खाने तथा मद्यपान आदिसे उत्पन्न होते हैं।

इन लोगोंकी भापा कुछ अपनी भी है और कुछ पास पड़ोसके प्रदेशोंसे ली गई है। फिर भी मेवाड़ी और गुजरातीका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इनके कुछ गीत ही आज इनका साहित्य है। ये गीत अधिकांशमें देवी माता और इनके कुछ पूर्वजोंकी स्तुतिके गीत हैं, जिसके कुछ नमूने यहाँ नीचे दिए जा रहे हैं :—

देवी माताके गीत—

ऊपर दारू पाड़ा ना भोग थी देवी नाराज थाय है
एतरे जोर-जुलूम, मार-वेगार;
एकला भील उपरज पड़े है।
काल—हीम—टीड़, टेम टेम आयाज करे।
सती ना वोल है के लोग चोख्यार वने।
नो तो !
—जवरो दुख भोगवो पड़है ! !

पानी पेलाँ पाल बाँध जो !

काल नी चमके बीजली छप्पनिया याद करावे हो,
तराणू ना काल में कोई वाणिया धान नी आले हो।
पादरी मां छोरा छोरी ब्रेची ने दन काटे हो,
हामो, कहियो; बेखरियो कोई गुलरीनी कूँपल खावे हो।
रजन, लाम्बड़ा; मोवड़ा—मोखा ना छोड़ां खांडे हो,
सेमल, गेजवा; बाजकान कोई लालरिया ने बाफे हो।
छोरा छोरी डोहा डोही लुगायां रुलावे हो,
दारूड़िया ना फोड़ा भायां मनख जमारे आये हो।
हत्यारी डाकण दारु ने छोडयां थी सुख पावे हो,
बोल सती ना पाछल बांचो तीने राम बचावे हो।

वलियानी कथा (बाल्मीक)

[ढाल–देवर रांगण ने घांटे सुवर घेरियोरे लोल समरक देवरियुं]

इक वागड़ वालियो भील रहे रे, ईलो बड़ा पापी हुतोरे,
सोरी करी लोको लंटी खूब पाप करेरे, मनखां ने डगरा मारें।
इक दिन आयो जोगी लइने तंबुरोरे, वगाड़ी भजन करे,
हरियुं कामठुं लइने वालियो भीलरे, भगतनी हामें दोड़े ॥
पेलो जोगी केवा लागे मने मा जेरे, हामली ने मारी वातरे,
डगरा ने मनखां भारी सोरी करी लुंटे री, ती पाप कोने लागे।
जीने खवडावुंसे हूँ तीने पाप लागेरे, वालियो भील एम के,
ताहर जोगी इने के के तारूं पाप कोइरे, लेवा तैयार नी थायरे ॥
तारे घेर जाई वदाने पुंसी आवजेरे, पाप जो करे ती भोगवे,
सोंरा वैयर वावा ने काका वाहनेरे, पुसी ने ती पासो आवे।
पासो आवी ने ती भगत ने पाय लागेरे, हात जोड़ी केवा लागे,
वड़ो पापी हूँ से ताजो तूं राहो वताड़रे, तूं कई तेमकरीरे ॥

ताहर जोगी केवा लागे तूं आई वहांरे, राम राम बोलजोरे,
पासे आवुं तां हूदी तूं बावा रामनुरे, नाम लीनें आई वहजे।
वालियों भील तां वहाने रामराम बोलेरे, पेलो जोगी तांथीग्योरे,
(यह वाल्मीकिकी कथा है कि किस प्रकार वे शिकारीसे भक्त हुए)

इनके प्रान्तमें पथरीली ज़मीन होनेके कारण उपज कम होती है। शराव मांस आदिकी कुटेवके कारण साहूकारोंका क़र्ज़ सदैव इन्हें घेरे रहता है। कमाईको इस तरह बरबाद करके दानों दानोंसे मुहताज वन मांस-मच्छी-घास-पत्ती आदिसे पेट भरनेको मजबूर होते हैं। आज लाखों भील अतिशय लाचारी और दीनताके शिकार बनकर पशुओं जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनका अतीत इतिहास भी उतना ही उज्ज्वल और बेजोड़ है जितना राजपूतोंका। आर्थिक दृष्टिसे भुखमरा होनेके कारण बच्चे बच्चियोंको मोल लेकर विधर्मी बना डालना आए दिनकी घटनाएँ हैं, सूदखोर बनियोंका ५) रुपएका क़र्ज़ बीस बीस वर्षतक मज़दूरी करनेपर भी अदा नहीं होता है और इधर ईमानदारीका महान् प्रतीक भील यह कहकर कि यह क़र्ज़ हमारी सन्तति अदा करेगी—जीवन-की लीला समाप्त करके चल बसता है। भील भूखा और नंगा होते हुए भी दिलका राजा है। वह अज्ञान और अपढ़ है, टूटी फूटी झोंपड़ीमें रहता है फिर भी क्या किसीको यह दिखाई नहीं पड़ता है कि उसके प्रान्तके हज़ारों भव्य महल मकान, बंगले और तिजोरियाँ उसीके महान् परिश्रमके जीते जागते सबूत हैं? वह इतना ईमानदार और सरल है कि नित्य प्रति शोषण करनेवालोंका भी वह निष्काम होकर पोषण कर रहा है। साहूकार और सरकारके प्रति उसकी यह स्वामिभक्ति किसी भी कृतघ्नके कठोर कलेजेको हिला सकती है।

भील जातिमें आज भी उत्साह और साहस है। आर्थिक संकट और अज्ञान-निशाका यदि किसी भी प्रकार अन्त हो सके तो संभवतः भारतवर्षमें उस जैसी सैनिक गुणोंसे भरपूर जातिका मिलना दुष्कर है।

भीलोंके विशाल क्षेत्रोंमें तीन प्रकारके लोग समाज सेवाका व्रत लेकर उतरे हैं। प्रथम ईसाई मिशनरी जिनका उद्देश्य सेवाके साथ साथ यह भी रहा है कि वे भीलोंको ईसाई बनावें। किसी स्वार्थ विशेषको लेकर मानव सेवा दूषित होती है, अतएव इन मिशनरी लोगोंको इस मानव सेवाका श्रेय न मिला—शीघ्र ही इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आर्य मिशनरी इन क्षेत्रोंमें पहुँचे और धर्मकी छीना

झपटीमें भील सेवाका महान् उद्देश्य विलुप्त हो गया । प्रसिद्ध मानव शास्त्री श्रीशरतचन्द्र रायका यह दृढ़ विचार है कि "ईसाइयोंके धर्म परिवर्त्तनके कार्यने प्रकृतिकी इन सरल सन्तानोंकी असीम हानि की है।" तथा प्रसिद्ध मानव सेवी श्री डाक्टर वेरियर एल्विनका कहना है कि "ईसाइयोंका अब इन पिछड़ी जातियोंमें रहना खतरनाक है, क्योंकि ये लोग अपने धार्मिक उद्देश्यके लिए पिछड़ी जातियोंके स्वत्वको नष्ट करते हैं और उनका शोषण करते हैं।" अतएव इन भील क्षेत्रोंमें धर्मका अखाड़ा खोलनेवालोंका जमा होना नितान्त अनावश्यक और निरर्थक है।

इसके बाद पूज्य गांधीजीके विचारोंसे अनुप्राणित दो स्थानोंपर विशेष रूपसे कार्य हुआ। एक पूज्य ठक्कर बाप्पाजी द्वारा संस्थापित भील सेवा मण्डल दोहद और द्वितीय श्री बालगंगाधरजी खेर द्वारा संस्थापित आदि वासी सेवा मण्डल बम्बई। पूज्य बाप्पाजीकी सेवाएँ अमूल्य हैं। उन्होंने भीलोंके बीच शिक्षा और समाज-सेवाका एक अद्भुत कार्य किया है। श्री माननीय खेरजीका कार्य लगभग ८ वर्षसे थाना (बम्बई) ज़िलेमें चल रहा है और शिक्षा तथा स्वास्थ्यके क्षेत्रमें एक स्तुत्य कार्य हुआ है। इनके बम्बई प्रान्तके प्रधान मन्त्रित्व कालमें भीलोंकी अवस्थाकी जाँचके लिए एक कमेटी भी बनी जिसने एक सुन्दर रिपोर्ट तैयार की। इसके सुझाव बहुत ही आकर्षक और उपयुक्त हैं।

बम्बई प्रान्तके अतिरिक्त राजस्थानी भीलोंके बीच काम करनेवाली सबसे बड़ी और ठोस संस्था राजस्थानी भील सेवक संघ है। इसका प्रधान केन्द्र बामनिया है और इसके संस्थापक श्री बालेश्वर दयालुजी हैं। भीलोंके अन्दर जन-जागृतिका कार्य जितना यहांसे हुआ उतना सम्भवतः और कहीं न मिलेगा। आज यहाँका भील एक जागृत प्राणी हो रहा है—आज उसे मालूम हो रहा है कि उसका क्या अधिकार है और क्या कर्त्तव्य है। सदियोंसे शोषित और कुचले हुए, मनुष्यको पशु बनाकर रखनेवाले राजाओं और सामन्तोंके सामने भील समाज आज उठकर बोलनेका साहस करने लगा है—अपनी आर्थिक दुरवस्थासे वह आज परिचित हो रहा है। उसके निवारणार्थ उसने आज प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये हैं! इस आर्थिक और राजनीतिक चेतनाका सारा श्रेय इस संस्था तथा इसके कार्य-कर्त्ताओंको है। सदियोंसे गिरी हुई इस पिछड़ी जातिमें आज उठकर सम्हलनेकी एक नई उमंग उत्पन्न हो गई है। इस आत्म चेतनाने उनके जीवनके प्रत्येक क्षेत्रपर प्रभाव डाला है। समाज सेवाका यह दृष्टिकोण जिससे जीवन पूर्णरूपसे और

चारों ओरसे विकसित हो—इस संस्थाकी एक महान् देन है। संस्थाका अन्य सामाजिक कार्योंके अतिरिक्त यह दृष्टिकोण सफलताका विशेष वाहक हुआ है जिसके कारण इस संस्थामें सदैव जीवन रहेगा। जहाँ इसने शिक्षाका प्रसार किया, अस्पताल और चिकित्साका प्रबन्ध किया, नागरिकताका प्रचार किया, वहाँ लाखों भूखे नंगोंको अकाल और दुर्भिक्षसे बचाया, आस पासके शोषण करने-वाले जन समूहोंसे सतर्क किया और अपने ऊपर होनेवाले सामन्तकालीन अत्याचारोंसे डटकर सामना करनेका बल और साहस प्रदान किया है। आज इन भीलोंमें साहस है, संगठन है और उठनेकी शक्ति है।

२—मध्यप्रान्त और बरार

[यहाँकी वनवासी जातियोंमें गोंड (भातृ-ध्रुर्व-मेरिया-वैगा) भील, अर्थरिया, कवार, कंध, परधान, कोल, वैगा, भुंजिया, गदवा मुख्य हैं। इन जातियोंमेंसे गोंड जातिका प्राचीन इतिहास बड़ा ही गौरवशाली रहा है। इनका सामाजिक गठन और सामाजिक संस्थाएँ दृढ़ और सजीव दिखाई पड़ती हैं।]

हमारे देशमें जो आज़ादी आई है, वह जंगलों और पहाड़ोंमें रहनेवालोंमें इन करोड़ों लोगोंकी भी है जिन्हें हम सामूहिक रूपसे आदि वासी कहते हैं। इन्हें भी आज़ाद मुल्कमें स्वतंत्र नागरिकोंकी भाँति अपना बराबरीका स्थान प्राप्त करना है।

—'लोकवाणी'

मध्य प्रान्तमें दो प्रकारकी जातियोंका निवास है—

(१) कोलारियन (२) द्रविड़।

(१) कोलारियन शाखाएँ—कोल, कुर्कू, भील बिंजवार, भुंजिया, भूमिया, वेगा, धांगर, गदवा, कनवार, मंजी, गोली, अघेरिया आदि लोग आते हैं।

(२) द्रविड़ शाखाएँ—गोंड, भातृ गोंड, मेरिया, ध्रुर्व, खतुलवार, अघेरिया, हल्वा, कोई, खोंड, धनवार, पंका इत्यादि।

कोल, कुल अथवा कुर—जातिके लोग संभलपुरके आसपास रहते हैं। ये लोग बड़े परिश्रमी और ईमानदार होते हैं। इनकी स्त्रियाँ बड़ी परिश्रमी होती हैं। इनमें मद्यपानकी प्रथा बड़ी भयंकर है। कुर लोग महादेवकी पहाड़ियोंमें रहते हैं। ये लोग अपनेको "मुआसिस" कहते हैं। ताप्ती और नर्मदाके जंगलोंमें ये लोग भ्रमण करते हैं। महुआका भोजन बड़े चावसे करते हैं। सूर्य-चन्द्रकी पूजा इनमें पाई जाती है। इनमें प्रथा है कि यदि वर वधूका उचित मूल्य नहीं दे पाता है और विवाह करना ही चाहता है तो वह वर वधूके पिताके यहाँ वर्षोंतक रहकर निःशुल्क कार्य करता है। कुछ समय पश्चात् विवाह कृत्य हो

जाता है। कभी कभी तो लोगोंको ५, ५ वर्षतक इसी प्रकार सेवा करनी पड़ती है और तब विवाह सम्बन्ध हो पाता है।

कुर्कू लोग—बेतूल और होशिंगाबाद निमाड़ ज़िलोंमें पाये जाते हैं। किन्तु पंचमढ़ी इनका प्रधान केन्द्र है। पंचमढ़ीके महादेव इनके प्रधान देवता हैं। चितावरदेव भी इनके मुख्य देवता हैं जिनका निवास ये लोग चितावर वृक्षमें मानते हैं। ये लोग गोंड लोगोंसे ज्योंके त्यों मिलते हैं चपटे चेरे, चौड़ी नाक, और मोटे होंठवाले ये लोग बड़े सच्चे और सीधे होते हैं। अधिकांश लकड़ी और घास काटनेका कार्य करते हैं। ये लोग गायको पूज्य मानते हैं और उसका मांस नहीं खाते हैं। ये लोग तथा खासकर सतपुड़ावाले कुर्कू बड़े मुर्दोंको जलाते और बच्चोंको गाड़ते हैं। मिस्टर सी० स्केलनके कथनानुसार इनकी चार उप जातियाँ हैं—बापचा, बाओरिया—रम्बा और कोन्दोई। इनमें हिन्दू प्रथाओंका बाहुल्य है। वर वधू महुआ वृक्षको मंडप मानकर सात बार उसकी परिक्रमा करते हैं। वर वधूके कपड़ेमें गाँठ बाँधता है। इस कृत्यके पश्चात् सहयोग होता है और आनन्दमय नृत्य होता है। इनकी वेश भूषा हिन्दुओं जैसी ही है।

इन्हींके साथी जो लोग कालीमीत पहाड़ीके आसपास रहते हैं—सुअर पालते हैं। उनकी बोलीमें भी काफ़ी अन्तर है। ये लोग तीन देवताओंको मानते हैं:—प्रथम डूंगर देव जिनकी पूजा प्रति वर्ष दशहरेपर होती है। इस उत्सवमें एक बकरेका बलिदान होता है तथा नारियल, खजूर, सेंदुर आदिसे उनकी पूजा करते हैं। द्वितीय मुतियादेवको मानते हैं। यह बहुतसे पत्थरोंका ढेर होता है। यहाँपर सुअरकी बलि चढ़ाते हैं। तृतीय माता (चेचक)की पूजा करते हैं। इस पूजामें बलिकी प्रथा नहीं है केवल नारियल चढ़ाते हैं। बलि देनेसे भय है कि माता असन्तुष्ट न हो जावें। इसके अतिरिक्त भी यह लोग चोलरा, हनुमानजी तथा चीतादेवकी पूजा भी करते हैं। इनके अपने अपने वंशोंके गोत्र होते हैं और एक ही गोत्रमें कभी भी विवाह सम्बन्ध नहीं करते हैं।

भील जाति—इसका वर्णन पिछले अध्यायमें किया गया है। ये लोग मध्य प्रान्तके नीमार प्रदेश—असीरगढ़के आसपास रहते हैं।

बिंजवार—छतीसगढ़, संभलपुर और रामपुरमें तथा भंजिया लोग भी रामपुरमें रहते हैं।

भूमिया—जातिके लोग छतीसगढ़में रहते हैं—ये लोग छोटे क़दके होते

हैं। इनके वाल लम्बे और काले होते हैं। ये छोटी छोटी झोपड़ियोंमें रहते हैं जो तितर वितर पाई जाती हैं। अधिकांश शिकारी होते हैं और यही इनका मुख्य पेशा है। खेती नहीं करते हैं वरन् पहाड़की जड़ीबूटियोंको इधर उधर ले जाकर वेचते खाते हैं।

*वैगा जाति—अपने गठन और बोली आदिके कारण एक विभिन्न जाति है। ये लोग गोंडोंसे भी नहीं मिलते जुलते हैं। अधिकांश मांडलामें पाए जाते हैं। इनकी तीन शाखाएँ हैं—विचवार, मुँदिया, भिरोतिया। ये लोग वड़े सच्चे निर्भय और स्वतन्त्र प्राणी होते हैं। कभी भी चोरी नहीं करते हैं। कार्य-कुशल तथा वाण सन्धान (चलाने)में वड़े कुशल होते हैं। कुल्हाड़ी लिये जंगलोंमें निर्भय होकर विचरण करते हैं। चीते शेरको देख कर वड़ी तेज़ीसे पेड़ आदिपर वातकी वातमें चढ़ जाते हैं और वहींसे तीरोंसे शिकार करते हैं। इनकी स्त्रियाँ वड़ी शौक़ीन होती हैं। संभवतः अपनी कार्यकुशलता और विशिष्ट बुद्धिके कारण ही ये लोग गोंड जातिके परम्परागत गुरु वन गये हैं। ये लोग गोंड लोगोंके पंडित होते हैं और ओझा तथा पुरोहितका काम करते हैं। इनकी सात उप जातियाँ हैं। धांगर लोग संभलपुर और विलासपुरमें रहते हैं और भेड़ोंके चराने आदिका काम करते हैं। गदवा लोग वस्तर और जयपुरमें रहते हैं। कनवार छत्तीसगढ़में हज़ारोंकी संख्यामें रहते हैं। ये लोग वड़े पियक्कड़ होते हैं। ये लोग हल द्वारा खेती करना पाप समझते हैं क्योंकि इनका विश्वास है कि हलसे पृथ्वी माताको कष्ट होता है। ये लोग 'वेवर' और 'डाही' तरीक़ोंसे खेती करते हैं और भाग्य भरोसे रहते हैं। 'मुरुवासी' इनका शिकारका देवता है। वैगा लोगोंका विश्वास है कि प्रत्येक रोग झाड़-फूंकके मंत्रोंसे ठीक हो जाता है। ये लोग मृतकको प्रायः जलाते हैं।

भारतकी अति प्राचीन जाति—गोंड

यह जाति वड़ी पुरानी है। इसकी वस्तियाँ प्राचीन समयसे ही छोटे छोटे राज्योंमें वँटी हुई थीं। इसका पता छठवीं शताब्दीसे लगता है। सोलहवीं

---

*वैगा जातिपर देखिए डा० एल्विन द्वारा लिखित पुस्तक।

और अट्ठारहवीं सदीमें तो इसके बड़े समृद्धशाली राज्यका पता चलता है। सारे गोंडवाना प्रदेशमें इस जातिके सरदारोंकी तूती बोलती थी। इनके राज्य वंशके ४८वें राजा संग्रामसिंहका नाम अधिक विख्यात है जिसके लड़के दलपति-शाहका विवाह महोबेके चंदेल राजाकी प्रसिद्ध पुत्री दुर्गावतीके साथ हुआ था जिसने अकबरके साथ लोहा लिया था। उस समय भोपाल, सागोर, दमोह, होशिंगाबाद, जबलपुर, नरसिंहपुर, मांडला, चांदा, देवगढ़ आदि स्थानोंमें इनके ४२ गढ़ थे। इससे ज्ञात होता है कि किसी समय इनका राज्य सिंहासन मध्य भारतका दिल्ली अवश्य बना रहा होगा। अट्ठारहवीं शताब्दीमें तीन गोंड राज्योंको नागपुरके भोंसला राजाने अपने राज्यमें मिला लिया। सन् १६८१में मराठोंने सागोरको ले लिया। इसके पश्चात् चार गोंड प्रान्तोंका पता चलता है। गढ़ माँडला, खरेल, देवगढ़ और चान्दा। धीरे धीरे मुसलमान तथा मराठों आदिने इन्हें राज्यच्युत किया और ब्रिटिश काल तक आते आते इन राज्य वंशियों-को पुनः जंगलोंकी ओर अज्ञातवास करना पड़ा। तबसे अबतक न मालूम कितने संघर्ष करते करते यह जाति अब भी बच रही है, यही एक आश्चर्य है। यह इस जातिकी जीवनी शक्तिका ही परिणाम हो सकता है।

गोंडवाना प्रदेश (जो इस जातिका लीलाकेन्द्र रहा है)की स्थिति इस प्रकार है। दक्षिणमें बम्बई प्रान्त, पश्चिममें बरार, उत्तरमें चम्बल नदीका किनारा और पूर्वमें पूर्वीय रियासतोंकी एजेन्सी फैली हुई हैं। सारांश यह है कि सारा मध्य प्रान्त इनका निवास स्थान है। इनकी बस्तियोंका विभाजन इस प्रान्तमें बहुत कुछ इस प्रकार है—"उत्तरी भाग मांडलामें ५६ फ़ीसदी, पश्चिमी स्थानोंमें ६० फ़ीसदी, पश्चिमी छिन्दवाड़ामें ३४ फ़ीसदी, पश्चिमी बेतुलमें २६ फ़ीसदी, दक्षिणी चान्दामें २२ फ़ीसदी, बालाघाटमें २२ फ़ीसदी पूर्वीय रामपुरमें १५ फ़ीसदी, पूर्वीय बिलासपुरमें १४ फ़ीसदी, उत्तरी जबलपुरमें १२ फ़ीसदी, और पश्चिमी होशिंगाबादमें ११ फ़ीसदी है।" इस प्रकार मध्य प्रान्तके प्रत्येक देहाती विभागमें इनकी छोटी छोटी बस्तियाँ जालकी भाँति फैली हुई हैं।

गोंड लोग १२ उपशाखाओंमें विभाजित हैं—राजगोंड, रघुवाल, ददेव, कललिया, पादल, वोली, ओभयाल, थोटयाल, कोयला मूतुले, कोइकोयाल, कोलाम, मुदयाल आदि। इन लोगोंके वंश या तो किसी जानवरके नामपर होते हैं अथवा किसी पेड़ पौदेके नामपर होते हैं, जैसे नागवंश, कच्छवंश, बकुलवंश,

तेंदुवंश आदि। कुछके नाम ऐसे जानवरोंके नामपर होते हैं जिन वंशोंमें उस प्रकारका जानवर नहीं मारा जाता है। इनके शरीरकी ऊँचाई ५ फ़ुट ५ इंच तक पाई जाती है। इनका सिर गोल, नाक छोटी, ओंठ वड़ा, चौड़ा मुँह, लम्वे काले वाल और रंग काला होता है। कहीं कहीं दाढ़ी मूँछ भी रखते हैं।

इनकी वेशभूषा विभिन्न स्थानोंकी विभिन्न प्रकारकी है। सर जेंकिसने लिखा है कि "मारी नामकी उपजातिवाले लोग जंगलोंमें नितान्त नंगे रहते हैं और प्राकृतिक साधनोंपर अपना जीवन पालन करते हैं।" इसके ५० वर्ष पश्चात् हिसलप साहवने लिखा है कि "मारिया नामकी उपशाखाकी स्त्रियाँ केवल मात्र पत्तियों द्वारा अपने अंगोंको ढकती हैं और छालोंका ओढ़ना वनाती हैं।" किन्तु अव ऐसी वात देखनेमें नहीं आती है। हाँ यह अवश्य है कि इनका परम्परागत स्वभाव ऐसा ज्ञात होता है कि ये लोग कपड़े कम ही पहिनते हैं। आज भी जो लोग पहिन सकते हैं वे भी एक छोटा घुटनोंसे ऊपर तकका कपड़ा कमरमें और एक साफ़े जैसी वस्तु सिरपर पहिनते हैं। वाक़ी शरीर खुला ही रखते हैं। अधिक धनी व्यक्ति एक कपड़ा और रखते हैं जो कभी कभी शरीरपर ओढ़नेके काम आता है। ग़रीव लोग लँगोटी ही पहिनकर दिन विताते हैं। धनी लोग एक वंडीका प्रयोग करते हैं। स्त्रियाँ एक लाल किनारीका लुगरा जो घुटनोंसे कुछ नीचे तक आता है पहिनती हैं और एक और कपड़ा वदनमें इस पारसे उस पार तक लपेट लेती हैं। हाँ यह लोग जव कभी विवाह उत्सव तथा नाच आदिको जाते हैं तो विशेष रूपसे सजते वजते हैं। स्त्रियाँ गलेमें वहुतसी मालाएँ वनाकर पहिनती हैं। नृत्यके समय पुरुष स्त्रियाँ सिरमें मोर पक्षीके पंखोंका ताज पहिनती हैं। पाँवमें घुंघरू और पैजनियाँ पहिनती हैं। स्त्रियाँ अपने वालोंको सजाती हैं और पीतल आदिके कुछ आभूषण भी पहिनती हैं। ये लोग लाल रंगके वड़े शौक़ीन होते हैं।

इनकी वस्तियाँ अधिकांश जंगलोंमें होती हैं अतः इनका पेशा भी उसी प्रकारका है। जंगली जड़ी वूटियाँ खाते हैं, शिकार करते हैं और मांसका भोजन करते हैं। कोदो और वाजराकी खेती भी करते हैं, महुआके फूल और फल भी इनका भोजन है। धनुष वाण वनाते, कुल्हाड़ी आदि वनाते और उन्हींसे जानवरोंका शिकार करते हैं। ये लोग गढ़े खोदकर वड़े वड़े जानवरोंको उसमें फँसाकर उनका वध करते हैं। जंगलकी मौसमी वस्तुओंको भी एकत्रित करके अपने वर्षभरके

भोजनका प्रबन्ध करते हैं। महुआको सुखाकर बाँसकी टोकरियोंमें भरकर रख लेते हैं। इमली खूब खाते हैं। टिन्डू चर (फल) आँवला, जामुन, ऊमर, बेर, आम, पीपलकी नई पत्तियाँ, बाँस, और करीलके नरम टुकड़ेका साग, और वर्षामें विभिन्न प्रकारकी जड़ें खोदकर खानेके लिए रख लेते हैं। स्त्रियाँ गोंद आदि इकट्ठा करनेका काम खूब करती हैं। बच्चे शहद आदि इकट्ठा करते हैं और बेंचते हैं। बस्तरके मोरिया लोग वर्षाके दिनोंमें लाल चीटियोंको खूब खोज खोजकर खाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह पत्तोंके दोने बना बनाकर उसमें लाल चीटियोंको खोजकर भरनेमें बड़ा आनन्द लेते हैं। ये चीटियोंका भोजन बड़े ही चावसे करते हैं—चूहे तथा गिलहरी आदिको भी बड़े शौक़से खातेहैं। हिरन, सुअर, बकरी तथा मुर्ग़ीके अंडे देवताओंपर चढ़ाकर खूब खाते हैं। अनाजोंमें



जंगलोंमें लकड़ी काटना इनका एक मुख्य उद्यम है।

ये लोग बाजरा पैदा करते और खाते हैं। ग़रीबीके कारण महुआकी शराब बनाकर पीते हैं। अधिकतर मैदानमें बसे हुए गोंड खेती आदिपर अपना जीवन निर्वाह करते हैं, और पर्वतीय गोंड अधिकांशमें जंगली वस्तुओंपर अपना जीवन पालन करते हैं। ये लोग वर्षामें जंगल काटते और उसे जला देते हैं, फिर ज्वार

बो देते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग (पुरुष, स्त्रियाँ व बच्चे) पत्तोंके दोने व पतरी बनाते, चटाई और रस्सियाँ बनाते हैं। जंगली लकड़ियोंकी छालोंमेंसे विभिन्न प्रकारके रंग भी निकालते हैं। कुल्हाड़ी, चाक़ू, तीर, कमान आदि बनानेके कार्यमें कुशल होते हैं। जंगली जानवरोंकी खालोंको एकत्रित करके बेचते हैं। हिरनके सींग बेचते और कंघियाँ बनाते हैं।

इनके घर इनकी बनाई हुई झोपड़ी होती है। ये सदैव झोंपड़ी बनाते समय इस बातका ध्यान रखते हैं कि वहाँ कोई तालाब, झील या नदी अथवा झरना पास हो। ये लोग अन्य जातिवालोंके पास या साथ रहना कभी पसन्द नहीं करते, क्योंकि ये अपने ही समाजके परिचित प्राणी होते हैं। दूसरेके साथ मिलना जुलना करके अपने सामाजिक बन्धनोंको ढीला नहीं करना चाहते हैं। यही दृढ़ता इन्हें आजतक अलग रखती आई है। प्रत्येक शाखाका पंच अपनी अलग अलग बस्तियाँ बसाना पसन्द करता है। जंगली लट्ठों और घास फूंसकी सहायतासे ये लोग झोपड़ियाँ बनाते हैं। झोपड़ियोंमें एक तंग दरवाज़ा पीछेकी ओर भी रखते हैं, जिसमेंसे होकर ये लोग निकल भागते हैं, जब कि कोई लम्बी बीमारी या रोग इनकी बस्तीमें फैल जाता है। झोपड़ीके सामने एक ज़मीनका ख़ाली टुकड़ा रखते हैं, जिसमें अधिकांश रूपसे ये लोग तम्बाकू बोते हैं, जिसका प्रयोग इनके जीवनमें सर्वत्र पाया जाता है। झोपड़ीके आसपास ही ये लोग सफ़ेद चकमक पत्थर डाले रहते हैं, जिससे आग पैदा कर लेते हैं। पास ही जानवरोंके रखनेका स्थान बना होता है। ये झोपड़ी छोटी छोटी होती हैं। उनके भीतर एक ओर रसोई होती है और एक ओर शयन तथा सामान रखनेका स्थान होता है। कई झोपड़ियोंको मिलाकर एक बस्ती या ग्राम बनता है। इस ग्राममें एक ऐसा स्थान होता है, जहाँ सब लोग मिलजुलकर बैठते हैं, पंचायत आदि करते हैं, इसे गढ़ी या बाड़ा कहते हैं। प्रत्येक गाँवमें एक मुखिया होता है, जिसे मुक़द्दम कहते हैं। एक निगरानी करनेवाला होता है, जिसे कोतवाल बोलते हैं। इनके समाजमें कई अंग होते हैं। राज गोंड लोग मालगुज़ार पटेल मंडल या मुक़द्दमके नामसे पुकारे जाते हैं! यह वर्ग अपेक्षाकृत धनी माना जाता है। इसके पश्चात् धुर या दुस्त गोंड लोग प्रधान, ओझा, संगीतज्ञ या भाट आदिका कार्य करते हैं। ये लोग महापात्रका काम भी करते हैं। बैगा और मुनिया लोग औषधि तथा जंत्र मंत्र और फूकनेका काम करते हैं। इनका इन ग्रामोंमें बड़ा

आदर होता है। पन्का और महर लोग लोहारी और जुलाहे आदिका काम करते हैं। इनके ग्रामोंका संगठन ऐसा होता है, जिससे इनकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं।

गोतुल-गृह

इन लोगोंकी प्रधान विचित्रताओंमें गोतुल गृह भी एक है। हाँ, मुंडा और कोन्यक लोगोंकी भाँति गोंडोंकी यह संस्था इनके जीवनके लिए अति आवश्यक अंग हैं। गोतुल गृह एक प्रकारके विशेष मकान होते हैं, जहाँ किसी भी बस्तीके सारे अविवाहित युवक और युवतियाँ विशेष रूपसे रात्रिमें रहते हैं। ऐसा उनके लिए अत्यावश्यक है। यह प्रथा मुरिया, मेरिया, गाइत्र लोगोंमें सर्वत्र और विशुद्ध रूपसे देखनेको मिलेगी। यह घर आयताकार आकृतिका बना हुआ होता है। काफ़ी बड़ा हाल होता है और उसके आगे एक बड़ा आँगन होता है। जिसमें नृत्य, खेल आदिकी व्यवस्था की जाती है। बाँसके बड़े बड़े खम्भोंपर (जिन्हें धारन कहते हैं) घास और फूंसकी छत छाई जाती है। अन्दर जानेका एक दरवाज़ा होता है। न कोई खिड़की होती है और न कोई बीचमें अथवा दीवालोंमें छेद होता है। यहाँ बस्तीके सभी अविवाहित बच्चे और लड़कियाँ साथ साथ रात्रि भर रहते हैं। खेलते, कूदते, नाचते, गाते सोते हैं। माता पिता ख़ुशी ख़ुशी सब बच्चोंको इन गोतुल गृहोंमें भेजते हैं। यहाँ तक कि ऐसा न करनेपर पंचायतकी ओरसे जुर्माना होता है। इन गोतुल गृहोंमें रहनेवाले युवकोंको "चेतिक" और लड़कियोंको "मोतीयारी" कहते हैं। इन गोतुल गृहोंका नियंत्रण करनेवाला इन्हीं लोगोंका एक नेता होता है, जो कि चुना जाता है। यदि यह नेता विवाह कर लेता है तो उसे अलग मकान बनाकर रहना पड़ता है और फिर चुनाव होता है। इस नेताको "चलाऊ" अथवा "सिल्लेदार" कहते हैं। यही गोतुल गृहोंका मानीटर या केप्टन होता है। इसके पश्चात् दीवान दूसरा बड़ा अफ़सर होता है। इसके पश्चात् तहसीलदार, सूबेदार, कोतवाल आदि विभिन्न कार्योंको देखनेके लिए होते हैं। प्रत्येकका कार्य बँटा रहता है। लड़कियाँ सफ़ाई आदिका काम करती हैं। संयुक्त उत्तरदायित्व समझकर प्रत्येक काम करता है। युवक युवती साथ साथ रहते रहते जब अपना योग्य साथी निश्चित कर लेते हैं, तो

विवाह कृत्य हो जाता है। विवाहके उपरान्त यह लोग गोतुल गृहमें एक दिन भी नहीं टिक सकते हैं। इन्हें अलग घर बसाकर रहना पड़ता है। साथी खोजनेमें कुछ प्रतिबन्ध भी होते हैं। एक ही गोत्रमें विवाह नहीं हो सकता है। विवाहके पूर्व किसने किससे प्रेम किया—यह सब एकदम गोपनीय रखना पड़ता है। इस नियमका उल्लंघन करनेपर वह सदस्य गोतुल गृहसे निकाल दिया जाता है और उसे भारी दंड देना होता है। अतः नित्य प्रतिके होनेवाले क्रियाकलाप नितान्त गुप्त ही रखे जाते हैं। युवक अपनी प्रेमिकाओंके लिए सुन्दर सुन्दर वाद्य और कंघे आदि आदि वना वनाकर उन्हें भेंट दिया करते हैं। ये लोग आनन्दसे वहुत प्रकारके उत्सव इन गोतुल गृहोंमें मनाते हैं। यहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है और नियमका नियन्त्रण भी है। प्रत्येकका समान अधिकार होता है। ये युवक संघ वस्तीके लिए विशेष लाभदायक भी होते हैं। यदि वस्तीवालोंपर कभी कोई आपत्ति आती है या कोई अन्य सामाजिक कार्योंके लिए किसी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता होती है, तो ग्रामका मुखिया इस गोतुल गृहके नेतासे सहायताकी अर्चना करता है। गोतुल गृहका नेता यह अपनी सेनाके वस्तीवालोंका काम निःशुल्क किया करता है। ग्रामोंके वड़े वड़े सामाजिक उत्सव आदिके प्रवन्धकर्ता अधिकांश यही गोतुल गृहवाले ही होते हैं। अतः इस दृष्टिसे देखा जावे तो गोतुल गृह समाज सेवाके लिए एक प्रकारके ट्रेनिंग सेन्टर हैं। जीवनके पारिवारिक सम्वन्धकी ट्रेनिंगके अतिरिक्त सामाजिक दृष्टिकोणसे भी यह गोतुल गृह एक उपयोगी संस्था है। यहाँ भ्रम हो सकता है कि गोतुल गृहोंमें आचार और चरित्र सम्वन्धी छूट होनेके कारण युवक और युवतियोंका चरित्रका पतन अवश्य होता होगा और परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य निकृष्टतम होता होगा। किन्तु यह मस्तिष्कमें आनेवाला विचार उस समाजमें चरितार्थ होता कहीं दिखाई नहीं देता है। न तो उनके स्वास्थ्य खराव होते हैं और न चरित्र पतनका कोई विशेष परिणाम दिखाई पड़ता है। इनके समाजके लिए यह गोतुल गृह सामाजिक, आर्थिक व व्यावहारिक दृष्टिकोणसे प्रत्येक रूपमें उपयोगी ही सिद्ध होते हैं न कि घातक।

गोंड लोगोंमें विवाहकी कई प्रथाएँ प्रचलित हैं। (१) सादा विवाहमें वर वधूके निश्चित मत जान लेनेपर वृद्ध लोग विवाहका प्रवन्ध करते हैं। वारात वधूके घरसे वरके यहां जाती है। वहां एक चवूतरेपर वर वधूमें अँगूठीका आदान

प्रदान होता है और विवाहका कृत्य समाप्त माना जाता है। पुरोहित आदिका भी कार्य कुछ होता है। इसके पश्चात् भोज, नृत्य आदि होता है। नव विवाहित वर वधू अलग एक नये घरमें चले जाते हैं।

२—जहाँ युवतियाँ ही अपना विवाह तय करती हैं और एक दिन कुछ लोगोंके समक्ष कुछ पूजाकी सामग्री और पानी अपने चुने हुए पतिपर छिड़क देती हैं। जिन लोगोंके सामने वे ऐसा करती हैं वे ही इस विवाह कृत्यके गवाह होते हैं। यह विवाह क़ानूनी माना जाता है। पश्चात् भोज नृत्य इत्यादि होता है।

३—लमसेना, समाना या लमभनाकी प्रथा है। इसमें वर वधूका निश्चित मत हो जानेपर वर दीनताके कारण वधूके पिताको यदि दहेज़ नहीं दे पाता है तो वर अपने ससुरके घर रहकर निःशुल्क कार्य किया करता है। जब ससुर चाहता है तो क़ायदेसे विवाह कर देता है। कभी कभी तो ५, ५ वर्ष तक इनको कार्य करना पड़ता है। वरकी इस दशामें रहनेको "चरघिया" बोला जाता है जिसका अर्थ होता है "ससुरका प्राणी" किन्तु यह प्रथा अब बहुत कम पाई जाती है।

४—गान्धर्व विवाह—इसमें वर ज़बरदस्ती कन्याको ले आता है। और विवाह कर लेता है। ऐसा भी बहुत कम होता है।

५—अनियमित विवाह—किसी प्रकार विवाह कृत्यके पूर्व ही यदि युवतीको गर्भ रह जाता है. तो पंचायतके सामने युवती युवकका नाम बता देती है और युवकको उसे स्वीकार करना पड़ता है तथा कन्याके पिताको कुछ देना होता है जिसे पंचायत नव पतिसे लेकर देती है। इस प्रथाको "पायथू" अर्थात् 'प्रवेश' कहते हैं।

सारांश यह है कि किसी भी प्रकार जब युवक युवतीका एक बार शारीरिक सम्बन्ध हो जाता है और पंचायतका भोज उसके पश्चात् समाप्त हो जाता है तो प्रत्येक प्रकारके विवाह क़ानूनी विवाह बन जाते हैं। यह मार्ग विवाह क्रियाको पूर्ण करनेमें सर्वत्र पर्याप्त समझा जाता है।

इन लोगोंमें विधवा विवाहकी भी प्रथा है। अधिकतर पतिके मर जानेपर पत्नी अपने पतिके छोटे भाईसे सम्बन्ध कर लेती है। गोंड लोगोंमें बहु पत्नीकी भी प्रथा है। श्री सी० पी० रसेल और हीरालालजी अपनी एक पुस्तकमें लिखते हैं कि "एक धनी गोंड अपनी सात स्त्रियोंको बाज़ारमें एक साथ घुमाने ले जाया

करता था यह बालाघाटके बाजारकी बात है।" इस प्रथाका आधार आर्थिक है और इसी आधारपर यह प्रथा हर एक जातिमें सर्वत्र मिलेगी।

गोंड लोग स्वभावसे ही कार्यप्रिय होते हैं। वह प्रातःकाल चार बजे उठ जाते हैं और तम्बाकू पीनेके पश्चात् दिनभर किसी न किसी प्रकारके कार्यमें लगे रहते हैं। कर्नल थामसनका कथन है कि यदि कोई इनपर विश्वास करे तो गोंड पुरुष और स्त्री बड़े ही कार्यशील व्यक्ति होते हैं। इनकी कार्यक्षमतामें किसी भी प्रकारकी कमी नहीं है। पुरुष और स्त्री दोनोंमें शारीरिक शक्ति पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है। फिर भी कुछ कार्य विभाजन इनके समाजमें चलता है। पुरुष प्रायः निम्न प्रकारके कार्य करते हैं :—जंगली भूमि साफ़ करना, पेड़ काटना, खेती करना, टोकरी बनाना, शहद और लाख खोजकर जमा करना, कोयला बनाना, झोपड़ी बनाना, वाद्य यन्त्र बनाना, शिकार करना, सुअर पालना, मुर्गी, गाय, भैंस आदि पालना, मन्त्र जन्त्र करना, कंघे बनाना इत्यादि। स्त्रियाँ प्रायः—बीज फल इकट्ठा करना गोंद इकट्ठा करना, पौधे जमाना, चटाई बुनना, पानी भरना, खाना पकाना, बच्चोंका पालन करना, उपले बनाना, रंग बनाने आदिका काम करती हैं। ये लोग भिन्न भिन्न रंगकी मिट्टी आदिसे अपनी झोपड़ियों-को लीपती हैं।

इन लोगोंको चिड़ियों और वनस्पतियोंका बहुत ज्ञान होता है। चिड़ियोंकी बोलीका विशेष ज्ञान होता है। वृक्षों, चिड़ियों और वनस्पतियोंके आगमसे ये लोग ऋतुओंका ज्ञान करते हैं। इनके महीनोंके नाम इस प्रकार होते हैं—पूस, माघ, फागुन, चैत, मूर, नई, हाघ, इरन्ज, इयाम, ओरमा, पन्दी आदि। ये लोग बादलोंकी उठान और गरज देख सुनकर बता देते हैं कि पानी कब बरसेगा। आकाश गंगाको ये लोग 'दूध धार' कहते हैं। रात्रिके प्रहरोंका ज्ञान कुछ तारे देखकर ये लोग लगा लेते हैं। विवाहोत्सव तथा शिकार आदि खेलने बाहर जाते समय ये लोग कुछ मुहूर्तोंका विशेष ध्यान रखते हैं। बिल्ली और स्यारके रास्ता काट जानेपर बाहर कहीं भी नहीं जाते हैं। बीमारियोंमें अधिकांश मन्त्र जन्त्रका प्रयोग करते हैं। गुनिया लोग वनस्पतियोंकी औषधि भी देते हैं। चीते आदिकी चर्बीका प्रयोग ये लोग गठिया आदि रोगोंमें करते हैं। मन्त्र जन्त्रमें इनका बहुत विश्वास होता है। साँप काटनेपर, भूत प्रेतोंके भयमें, हैज़ा चेचकमें, वर्षामें, फ़सल काटनेपर, गर्भ धारणपर, जन्म, मृत्युपर, नृत्य गान, प्रेम प्रदर्शनमें,

मकान बनाते समय, जंगल काटते समय आदि प्रत्येक पदपर ये लोग अपने वैगा और गुनिया ओझाके आश्रित रहते हैं। इन्हें विश्वास है कि जो स्त्री बच्चेके उत्पन्न होते समय मर जाती है, वही चुड़ैल होती है। उससे ये लोग बहुत डरते हैं। इन्हें विश्वास है कि यम दक्षिण दिशामें रहते अतः कभी भी दक्षिणको पैर करके नहीं सोते हैं—मृत्युकी दशामें ही दक्षिणको पैर करते हैं। इनका जीवन वनों पहाड़ोंमें ही बीतता है अतः ये लोग वनदेवी (जिन्हें पार्वती मानते हैं) की उपासना करते हैं। भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न देवोंकी पूजा होती है। उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं :—इल्हा देव, नराइन देव, सूरज देव, माता देवी, महादेव, पार्वती, बड़ादेव, रवैर, ठाकुर देव, डूंगर देव, भीमदेव। सुअर और बकरेकी बलि कुछ नारियल आदिके साथ पूजामें चढ़ाते हैं। अधिकांशमें मुर्दोंको जलाते हैं और पश्चात् भोज आदि करके उसे विस्मृत करते हैं। कहीं कहींपर गाड़नेकी भी प्रथा है।

इनकी भाषा गोंडी नामसे प्रसिद्ध है। जिसका साहित्य इनके गीत ही हैं। लिखित साहित्य इसमें नहीं है। परम्परागत गीतोंका यदि एकत्रीकरण किया जाये तो अवश्य भाषा क्षेत्रमें एक नई खोज होगी।

खोंड

खोंडके शाब्दिक अर्थ 'पर्वतीयजन' होता है। ये लोग रहते भी पहाड़ोंमें ही हैं। अधिकांशमें संभलपुरके कालाहंडी प्रदेशमें कोचरिया और डोंगरिया नामकी उपजातिवाले रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग महानदीके आसपास चिलकालेकके आसपास तथा पूर्वी बस्तर और बरारके पश्चिमी भागमें रहते हैं।

इन लोगोंकी तीन शाखाएँ हैं—बेतिया खोंड जो घने जंगलोंमें रहते हैं। २—वेनिया खोंड जो पहाड़के किनारे किनारे खेती करते हैं। ३—खोंड जो मैदानोंमें घूमते फिरते हैं। इनके गाँव छोटे छोटे होते हैं। गाँवका मुखिया जिसे "खोंनरो" कहते हैं सर्वेसर्वा होता है। उसकी आज्ञा हरेकको माननी पड़ती है। ये लोग बड़े साहसी होते हैं। इनके नमस्कार करनेका तरीक़ा भी विचित्र है। छोटा कहता है कि मैं "अपने रास्तेपर हूँ" बड़ा कहता है 'जावो'। इन लोगोंमें अपने मुखियाकी बात ही ब्रह्मवाक्य समझा जाता है।

इनके विवाहकी प्रथा भी विचित्र है—विवाह मौखिक रूपसे तय हो जानेपर वरका पिता अपने साथियों सहित कन्याके पिताके घर पहुँचता है। चावल और शराव साथमें जाता है। पुजारी जुलूसमें देवताकी पूजा करता है। फिर दोनों ओरके लोग हाथ मिलाते हैं। विवाहकी घोषणा होती है। उत्सवमें दोनों ओरके लोग भाग लेते हैं। फिर शामको वड़ा भोज होता है। उसके पश्चात् नृत्य और गीत होते हैं। इसीमें वरका चाचा वरको कन्धेपर विठाकर नाचता है और वधूका चाचा वधूको कन्धेपर विठाकर नाचता है। रातके समय नाचते-नाचते दोनों एक दूसरेके वोझेको वदल लेते हैं और वरका चाचा वधूको पाकर भाग जाता है और छिप जाता है। अव दो दल हो जाते हैं। लड़कीवाले लड़कीको खोजते फिरते हैं। कभी कभी तो यह रातकी भगदड़ वड़ी खतरनाक और अनाचार आदिका रूप धारण कर लेती है। अव यह प्रथा उठती जा रही है। आखिरकार वर वधू साथ कर दिये जाते हैं और विवाह पूर्ण माना जाता है। ये लोग विशेषतया 'पृथ्वी'की पूजा करते हैं। सूर्य, चन्द्र, माता, मेघ, नदी, ग्राम देवता आदिकी भी पूजा करते हैं। विशेष वात इनमें यह है कि इनके देवताओंका न तो कोई प्रतीक है और न कहीं मन्दिर है।

इसके अतिरिक्त गोटे लोग गोदावरी प्रान्तमें, लजर सतपुड़ाके जंगलोंमें, तागरा जगदलपुर, सीतापुरमें (ये लोग सर्व भक्षी होते हैं) कंजर नागपुर और वर्धाके वीच, वँदरवा छत्तीसगढ़में (जिन्हें घरोंमें रहना पसन्द नहीं) नाथ और कमार रायपुरके जंगलोंमें, (ये लोग रस्सीपर नाचते कूदते हैं) और कैकारी लोग वरारमें—यत्र तत्र पाये जाते हैं। ये लोग अपने पड़ोसियोंमें इतने जल्दी मिल रहे हैं कि वहुत शीघ्र इनका अपना अस्तित्त्व सदैवके लिए लुप्त हो जायगा।

३—नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें—टोडा

[ये लोग नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें निवास करते हैं। टोडा नामकी जाति प्राचीन और वनादिवासी होनेपर भी इनमें वे गुण नहीं पाए जाते जो अन्य वनवासियोंमें पाए जाते हैं। न इनके पास धनुषबाण हैं न अन्य हथियार। ये लोग शुद्ध चरवाहेका जीवन व्यतीत करते हैं और दूध मक्खन अनाजपर ही निर्भर रहते हैं। इनकी संख्या अब कुछ सैकड़ोंमें ही रह गई है। ये बड़े ही भोले भाले प्राणी हैं।]

टोडा नामकी जाति नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें अत्यन्त प्राचीन कालसे रहती चली आई है। ये लोग अपने आपको स्वयं रामसेनाके वंशज बताते हैं। कई इतिहासकारोंका मत है कि संभवतः ये लोग सीथियन नामकी जातिके अवशेष हैं। इनके विषयमें अभीतक ८वीं शताब्दीके पूर्वका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। हाँ सन् ७५६ ई०का रचित तामिल ग्रंथ––"शिलप्पाधिकरम्"-में इनका कुछ निर्देश मिलता है। इससे यह पता चलता है कि ये लोग चेरा नामक राजाके अनुयायी होकर ८वीं शताब्दीमें नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें रहने लगे थे। इसके पश्चात् ये लोग यहीं भिन्न भिन्न स्थानोंमें आजतक विचरते फिरे। इनकी उत्पत्तिके विषयमें इनकी स्वयंकी एक बहुप्रचलित गाथा है वह इस प्रकार है:––

इनके सबसे प्रथम देवता जिनका नाम ओन था पृथ्वी (पिथी)के पुत्र थे। सबसे प्रथम देवीका नाम तीक्रीज़ी था। ओन मृत्यु लोकके शासक हुए। एक बार ओन और तीक्रीजी कुन्डाहो नामक चोटीपर गये। दोनोंने बीचमें एक छड़ रक्खी। दोनों छड़के एक एक सिरेपर खड़े हो गये। ओनने एक कोनेपर खड़े होकर १६०० भैंसें उत्पन्न की और तीक्रीजीने दूसरे कोनेपर खड़े होकर १८०० भैंसें उत्पन्न कीं। पहिली भैंसें पवित्र समूहमें समझी गई और दूसरा समूह साधारण माना गया। इन्हीं समूहोंसे सबसे प्रथम भैंस नामके जानवरकी जाति चली। इसी समय ओनने सबसे पहिला ओडा नामक पुरुष उत्पन्न किया। इसकी एक हड्डी द्वारा ही ओनने एक स्त्री उत्पन्न की। इन्हींसे सृष्टि उत्पन्न हुई। एक बार

अचानक ही ओनका पुत्र पानीमें डूब गया। अत: ओन उसीके शोकमें सदैवके लिए यहाँसे चला गया और मरे हुए लोगोंके लोकमें रहने लगा जहाँ उसका पुत्र मरकर पहुँचा था तीक्रीजीने यह देखकर ओनका स्थान ग्रहण किय। और टोडा जातिका शासन-भार सँभाला। उसीने इस जातिके सब रीति-रिवाज आदिको निश्चित किया और इस जातिको कई वर्गोंमें विभाजित किया। ये उपजातियाँ इनकी आजतक चली आ रही हैं।

इस गाथामें इनका पूर्ण विश्वास है। इनकी आज भी पाँच उपजातियाँ उपलब्ध हैं। पेकी या पेकान, कदन, केना, टोडी और टरल। ये लोग टोडानाद प्रदेशमें सर्वत्र फैले हुए हैं। इनमें अधिकतर पुरुषोंकी ऊँचाई ५ फ़ीट ४ इंचतक और स्त्रियोंकी लम्बाई ५ फ़ीट १ इंचतक पाई जाती है। ये लोग बड़े निर्भीक, स्वाभिमानी और प्रसन्न वदन होते हैं। अन्य वनवासियोंकी अपेक्षा ये लोग अधिक वुद्धिमान होते हैं। प्रकृतिने इन्हें सुसंगठित शरीर प्रदान किया है। रंग ताँवेकी तरह चमकता हुआ और गठा हुआ व्यक्तित्व देखकर ऐसा मालूम होता है मानों नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें छिपे हुए ये मानव कठिन कार्यकी मूर्त्तिमान प्रतिमाएँ हैं जो यत्र तत्र विखरी हुई देखनेमें आती हैं।

इन्हीं पहाड़ियोंमें इनकी छोटी छोटी वस्तियाँ वसी हुई हैं। इनकी छोटी छोटी घास और मिट्टी द्वारा वनी हुई झोपड़ियाँ होती हैं। ये झोपड़ियाँ अधिकतर पहाड़ी घाटियोंमें वनाई जाती हैं जहाँ झरना आदि समीप होता है ताकि पानीकी खोजमें दूर तथा अन्यत्र न घूमना पड़े। इन झोपड़ियोंमें अन्दर घुसनेका मार्ग इतना सकरा होता है कि आदमी वैठकर वड़ी दिक़्क़तसे इसमें घुस सकता है। अत: लोग अधिकतर लेटकर ही जाते हैं। इस कार्यमें ये लोग इतने अभ्यस्त होते हैं कि वातकी वातमें ये लोग—अन्दर घुसकर निकल आते है और देखनेवालोंको इस सफ़ाईपर आश्चर्य होता ह। इस झोपड़ीके अन्दर ही रसोई आदिका प्रवन्ध होता है और धुवाँ निकलनेके लिये छिद्र होते हैं। इसीके भीतर सोनेके लिए स्थान होता है जो कि एक लम्बे चवूतरेकी शक़्लका होता है। इस झोपड़ीके वाहर ही भैंसों आदिके लिए साधारण छायादार झोपड़ी वना लेते हैं। उसके आसपास एक पत्थरकी साधारण दीवाल थोड़ी थोड़ी ऊँची खड़ी कर लेते हैं। यहीं इनके महलका परकोटा होता है।

ये लोग कपड़े वहुत कम पहिनते हैं और जो कुछ पहिनते भी हैं नितान्त सादे

होते हैं। एक पुटकली नामका वस्त्र जो कि रंगीन डोरोंसे कढ़ा हुआ होता है इनकी स्त्रियाँ पहिनती हैं इसे पट्टीकी भाँति कन्धेपरसे डालकर बदनमें लपेटती हैं। इसे पहिनकर भी इनकी फुर्तीमें जरा भी कमी नहीं आती है। ये सिरपर कोई भी वस्त्र धारण नहीं करती हैं। स्त्रियाँ लम्बे वाल रखनेकी शौक़ीन होती हैं।

इन लोगोंमें धनुष वाणका प्रचार नहीं है। इनका जीवन चरवाहेका जीवन है। प्रधानतया ये लोग भैंसोंको पालते हैं और इन्हींके सहारे जीवनयापन करते



टोडा लोगोंके भोले भाले और सादा जीवनका यह एक दृश्य है। भैंसें ही इनकी सम्पत्ति होती हैं जिन्हें ये पूजाकी वस्तु समझते हैं। सामने ही एक टोडा युवक प्रणाम करता हुआ और दूसरा उसे आशीर्वाद देता हुआ दिखाया गया है। प्रणाम करनेकी यह विधि इनमें वड़ी विचित्र दिखाई पड़ती है।

हैं। इन्हीं भैंसोंके समूहके समूहको लिये हुए पहाड़ी पहाड़ी घूमना और उन्हींका घी दूध आदि क्रय करना इनका एकमात्र व्यवसाय है। इन भैंसोंको जो इनकी वहु-मूल्य धरोहर होती हैं—ये लोग वड़ी श्रद्धासे पालते हैं और उन्हें पवित्र समझकर

निशिदिन पूजा करते पाये जाते हैं। इसीको ये लोग पवित्र जीव समझते हैं जो सचमुचमें इनके जीवनका अमूल्य धन है। अधिकतर पुरुष बाहरका कार्य और स्त्रियाँ घरेलू काममें व्यस्त रहती हैं। पुरुषोंका काम नित्य प्रति नये नये चरागाहोंकी खोजमें निकलकर सारे दिन भ्रमण करना ही रहता है। ये लोग सवेरे उठकर सूर्यको नमस्कार करके अपनी भैंसोंको बड़े आदर और प्यारसे घास आदि खिलाते पिलाते हैं। सन्ध्यातक घर लौटकर दीपक जलाते और सायं दीपकको आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे नमस्कार करते हैं। यह दीपक पूजा इनका अचूक कार्य होता है। इनकी प्राचीन गाथाओंमें, धर्ममें, कथा—कहानियोंमें, महाविरोंमें और गीति-रीतिमें भैंसके प्रति अटूट श्रद्धा पूर्णरूपसे ओतप्रात है। जीवनकी प्रत्येक पवित्र क्रियाओंके साथ भैंसकी पवित्र स्मृति इस प्रकार शृंखलाबद्ध है कि स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भैंसके गलेमें बँधे हुए घंटेको ये लोग हिरिया कहते हैं जिसे ये पवित्र मानते हैं।

ज्ञात ऐसा होता है कि इनके समाजमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी कमी है एक परिवारमें कई भाइयोंके बीचमें एक स्त्री होती है और वह एक एक माहतक एक एक भाईके पास रहती है। सब बच्चे भी सभी भाइयोंमें विभाजित कर लिये जाते हैं। इस सम्बन्धमें इनमें मनोमालिन्य कभी नहीं देखा जाता है। इनमें विवाह-पद्धति बड़ी विचित्र होती है। वर वधूके सिरपर पहिले दायाँ पैर रखता है। फिर बायाँ पैर रखता है। इसके पश्चात् वधूको रसोईके लिए पानी लानेको कहा जाता है। जब वह पानी लेकर आजाती है तो यही कृत्य विवाह-रीतिको पूर्ण करनेमें पर्याप्त समझा जाता है। इस उत्सवके अतिरिक्त भी जन्म, मृत्यु, कर्णछेदन, गर्भधारण आदि भी मनाये जाते हैं। ये हिन्दू परम्परा इनमें व्यापक रूपसे पाई जाती है। भैंसोंको ये लोग देव सम्पत्ति मानते हैं अतः भैंसोंके रक्षक ही इनके धर्मगुरू या पंडित माने जाते हैं। ये लोग एक एक समूहके अलग अलग होते हैं। इन्होंकी आज्ञासे सब उत्सव सम्पादित होते हैं। इनके सबसे बड़े उपास्यदेव 'बतीरंगा' स्वामी हैं जिन्हें ये लोग रंगा स्वामी पहाड़ीके शिखरपर जाकर पूजते हैं इनकी पूजामें किसी प्रकारकी बलिदान या हत्या नहीं होती है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य देवोंको मानते हैं जो कि अलग अलग फ़िरक़ेके अलग अलग होते हैं। ये लोग मुर्दोंको जलाते हैं। किसीकी मृत्युके पश्चात् सिर मुड़ाते हैं।

भैंसोंकी वलि देते हैं जिसको वे इस प्रकार समझते हैं कि वह भैंसे भी मरकर अपने स्वामीसे जाकर मिल जावेंगे।

मृत्युके पश्चात्के उत्सवको ये लोग "हरी दाह संस्कार" कहते हैं। मृत्युके २ माह पश्चात् जो उत्सव होता है उसे ये लोग 'सूखा दाह संस्कार' कहते हैं। इनमें सभी लोग एकत्रित होते हैं।

टोडा लोग अपने आपको कोटा और वेदगा आदि जातियोंसे ऊँचा समझते हैं। ये लोग अपनी श्रद्धा और विश्वासमें वड़े कट्टर होते हैं। परदेशी लोगोंसे अधिकतर विशेष सशंकित रहते हैं और ऐसा सदैव प्रयत्न करते रहते हैं कि कोई भी परदेशी उनकी किसी भी प्रकारकी वातको न जानने पावे। इनका वर्ष वारह माहका होता है। इनके महीनोंके नाम इस प्रकार हैं—नई, इम्पोती, कुदरी, अतनी, नतनी, ऊनी, अथेरी, अदी, ओवनी परितासी, तुदीवी, क्दीवी। ये नाम तामिल भाषाके नामोंसे मिलते जुलते हैं। इनका वर्ष प्रायः अक्टूबरसे प्रारम्भ होता है और महीना द्वितीयाके चन्द्रोदयसे प्रारम्भ होता है। इन महीनोंका पता और गिननेका नियम वड़ा प्राकृतिक है। जव घास सूखने लगती है तभी इनका वर्ष प्रारम्भ होता है। कुछ फूलोंके फूलनेका समय इन्हें ऐसा मालूम रहता है कि ठीक मासकी गिनती ये लोग उन्हींसे करने लगते हैं। यहाँतक कि तीन वर्षके अन्दर ये लोग एक मास अधिक भी मना लेते हैं और पुनः इनका वर्ष ठीक प्रकारसे चलने लगता है। इनके दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—अस्वोम (रविवार) तुवोम (सोमवार) ओम (मंगल) पुत्व्वोम (बुधवार) तम (गुरुवार) पिल्वोम (शुक्रवार) तन्वोम (शनिवार) इनकी भिन्न भिन्न उपजातियोंमें भिन्न भिन्न दिन शुभ और अशुभ समझे जाते हैं। दाह संस्कारकी क्रिया इन्हीं निश्चित् दिनोंमें होती है। तवतक शवकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है जवतक कि वह विशेष दिन न आ जावे।

डाक्टर काल्डवेल्डका कथन है कि इनकी भाषा द्रविण परिवारकी है। तामिल और कन्नड़ीका प्रभाव नितान्त स्पष्ट है। ज्ञात होता है कि इनकी वोली प्राचीन तामिलकी किसी शाखाकी अवशेष मात्र है। आज भी वहुतसे तामिल शब्द इनकी वोलीमें भरे पड़े हैं। ये नृत्यके भी वड़े शौक़ीन होते हैं। हाथमें हाथ मिलाकर वड़े अनन्दसे सुन्दर मधुर शब्द करते हुए खूब नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ नाचती तो नहीं किन्तु इनके साथ एक विचित्र स्वर और ध्वनिसे ओष्टों द्वारा ऐसा शब्द निकालती रहती हैं कि वह इनके नृत्यके बीच वड़ा ही आनन्द उत्पन्न

करता है। इनका आपसमें नमस्कार तथा प्रणाम करनेका तरीका और भी विचित्र है जिसको देखकर कोई भी अपनी हँसी नहीं रोक सकता है। छोटा अपने बड़ेके सामने घुटने टेककर वैठ जाता है। बड़ा अपना पैर उठाकर नतमस्तकवाले मनुष्यके सिरपर रख देता है और इस प्रकार उसे आशीर्वाद देता है।

कोटा जाति

ये लोग नीलगिरिके कोटागिरि प्रदेशमें पाये जाते हैं। प्राचीनतामें ये लोग टोडा जातिके पश्चात्के लोग हैं। बल वृद्धिमें भी यह लोग टोडा लोगोंसे भिन्न होते हैं। इनका रहन सहन, पहिनावा, वोली और चरित्र टोडा जातिसे पृथक और भिन्न है। स्वच्छता और स्वास्थ्यका ध्यान भी इन्हें कम है। रंग इनका काला—वदन मैला और वालोंको इधर उधर तितर वितर फैलाये हुए अर्द्ध सभ्य दशामें घूमते दृष्टिगोचर होते हैं। अधिकतर मरे हुए जानवरोंका मांस तथा चिड़ियों आदिको मारकर खाते हैं। कहीं कहीं खेत भी जोतते हैं। पैदावार-का १।६ भाग टोडा लोगोंको देते हैं। इनमें अधिकतर लुहार वढ़ई और व्रर्तन वनानेका काम भी करते हैं। घर इनके छप्परोंके वने होते हैं। इनके यहाँ एक स्त्री तथा पतिका ही रिवाज है। ये लोग शिवकी पूजा करते हैं जिन्हें ये लोग 'काम तरंग' कहते हैं। यद्यपि इनके यहाँ पुजारी वर्ग विभिन्न नहीं होता है किन्तु विभिन्न वस्तियोंमें यह कार्य परम्परागत वंशोंसे चला आता है। शिवमन्दिर ग्रामके समीप ही होते हैं। इनको अफ़ीम खानेका सवसे वड़ा व्यसन है।

वरघेर वेदगा अथवा वेदगा जातियाँ

यह जातियाँ नीलगिरि पहाड़ियोंकी जातियोंके अन्तर्गत सवसे अधिक वद्धिमान और साहसी हैं। वेदगाके शाव्दिक अर्थ उत्तरके लोग होते हैं। सम्भव है किसी प्राचीन समयमें ये लोग उत्तरसे आये हुए हों। मैसूर और कनाराके लोग इन्हींके परिवारवाले जान पड़ते हैं।

ये लोग टोडा लोगोंको कर देते हैं और इन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। इनमेंसे अधिकांश कृषि कार्य करते हैं। इनकी स्त्रियाँ वड़ी परिश्रमी होती हैं। ये शैव ही ज्ञात होते हैं। क्योंकि इसी शक्तिकी उपासना ये लोग अधिकतर

किया करते हैं। ये भोलीभाली जाति लगभग ३३८ देवताओंकी पूजा करती हैं। सवसे प्रधान देव इनके रंग स्वामी हैं। वह अपने मन्दिर मिट्टी और फूंससे वनाते हैं। इनके मकान भी पहाड़ियोंकी तराईमें वड़े स्वच्छ और सुन्दर वने हुए दिखलाई पड़ते हैं। शरीरसे भी ये लोग साफ़ रहते हैं। दाढ़ी नहीं रखते हैं। साफ़ा वाँधते हैं। अपने पहिनावे और रहन सहनसे यह लोग अपने अन्य पर्वतीय भाइयोंसे स्पष्ट विभिन्न ज्ञात हो जाते हैं। इनके यहाँ सती प्रथाका प्रचलन वहुत रहा जो कि अव वहुत कम हो गया है। स्त्री अपने पतिकी चिताकी ओर दौड़कर ज़ेवर कपड़े इत्यादि फेंककर अपने आपको जलती हुई दाहमें स्वाहा कर देती थी। मित्र तथा परिवारके लोगोंके रोकनेपर भी यह प्रथा अधिक दिनों तक चलती रही किन्तु अव यह लोप होती जा रही है।

इस जातिकी १८ उपजातियाँ हैं जिनमें दो वड़े वड़े वर्ग हैं।

उच्च वर्गमें—१ वोदेरु जिनका सम्मान सवसे अधिक होता है। समाजमें वड़े माने जाते हैं।

२ कंगारु—ये लोग रंगास्वामी शिखरके आसपास रहते हैं और वातचीतमें वड़े कुशल होते हैं।

३ अधिकारी—इनकी तीन उपजातियाँ और हैं। अ—कनाकरु—ये पढ़ना लिखना जानते हैं। दवा करनेमें कुशल होते हैं। व—ये वोदेरुसे मिलते हैं। स—वेली ये वड़े होशयार और चालाक होते हैं।

४ हंसवरु—इस वर्गके लोग नीची श्रेणीके समझे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त ११ और उपजातियाँ निम्न वर्गमेंसे हैं—हत्तर अनीस जो टोडन्नादमें पाये जाते हैं—मारिस, केटी, दुम्भा, गोंजा, मनिका, टोरिया, कुम्वरक जो कलहट्टीके पास पाये जाते हैं। ये उपजातियाँ आज आपसमें इतनी मिलजुल गई हैं कि इनकी विभिन्न स्थिति स्पष्ट नहीं होती है। इसके अतिरिक्त इनमेंसे अधिकांश दूसरे धर्मोंमें चले गये हैं अतः इनकी प्राचीनता और शुद्धता और भी संशयात्मक हो गई है।

टूला जाति

ये जाति पहाड़ियोंकी नीची तराईमें पाई जाती है। इनका टोडा लोगोंसे कोई सम्वन्ध नहीं है। अतएव दूसरी जातियोंकी तरह ये लोग टोडा जातिको

किसी प्रकारका कर आदि नहीं देते। ये लोग एक स्थानपर कभी नहीं रहते। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर सदैव चलते फिरते रहते हैं। कभी कभी ये लोग नाम मात्रके लिए खेती करते हैं। अधिकतर वनैली वस्तुओंपर ही निर्भर रहते हैं। ये लोग वड़े ही कुशल शिकारी होते हैं। वड़े साहसी और निर्भीक तथा जंगली जानवरोंके सामने निर्भय होकर जाते हैं—

विवाहका कोई विशेष रीति-रिवाज नहीं है। स्त्री पुरुषका सम्बन्ध दैवात ही हो जाया करता है। जिस सम्बन्धको वे सच्चाईके साथ निभाते हैं। बच्चे होते रहते हैं फिर भी वैवाहिक कृत्य नहीं होते हैं। दुरात्माओंमें इनका विश्वास होता है। अधिकतर मृत्युके पश्चात् मृत शरीर गाँवके वाहर गड्ढेमें फेंक दिया जाता है और उसका कोई संस्कार नहीं होता है। यह रिवाज अब इनके यहाँ उठने लगा है और जलानेका कार्य कहीं कहीं प्रारम्भ हो गया है। ये लोग रहन-सहनमें वड़े दीन और ग़रीव होते हैं। भिर भी वर्षमें जव रंगास्वामीका वृहत उत्सव होता है तो ये लोग पूजा पाठमें, उपासनामें, सक्रिय भाग लेते हैं। ये लोग रंगास्वामीको अपना देव उसी भाँति मानते हैं जैसे अन्य जातिके लोग। कहीं कहीं धार्मिक वन्धन और धार्मिक सम्मेलन इनमें सामाजिकताकी वू भरनेमें अधिक सहायक हुआ है। दूसरोंके स्पर्शमें आनेके कारण—ये लोग अधिकतर वदलते चले जा रहे हैं और अपना पुराना चोला छोड़ रहे हैं।

कुरुम्बा अथवा मुलु कुमुम्बा

मूलतः कुरुम्बा और रोला लोगोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। इनका भोजन वनैली वनस्पतियाँ और शिकार हैं। कहीं कहीं कृषि भी करते हैं किन्तु उसका सदुपयोग कभी नहीं करते। इनकी झोंपड़ी वड़ी गन्दी होती हैं। एक चिथड़ेके अतिरिक्त इनके वदनपर कोई कपड़ा नहीं होता है। पुरुष और स्त्री दोनों इसी भेषमें रहते देखे जाते हैं। ये लोग पहाड़ीकी दक्षिण तराईमें रहते हैं। घने जंगलोंमें स्वतन्त्रताके साथ विचरण करना इनका सादा काम है। ऐसे घने जंगलोंमें इन मानवोंको देखकर डर लगता है। असामाजिक होनेके कारण इनका चेहरा और इनकी आकृति भयोत्पादक होती है। अपनी इसी दानवीय आकृतिके कारण ये लोग अन्य जातियोंके लिए सम्मानके पात्र वन गये हैं। वरवर

तथा टोडा जातिके लोग इनका दर्शन बड़ा अशुभ मानते हैं, तथा भयके कारण इन्हें तमाम बीमारियों और आपत्तियोंका वाहक समझते हैं। ये लोग अपने भयावनेपनके कारण ही अन्य लोगोंके पुजारी ज्योतिषी वैद्य आदि बने हुए हैं। कोई भी पड़ोसी जाति इन्हें नाराज़ नहीं होने देती। अतएव ये लोग अपनी भयावनी सत्ताके कारण ही दूसरोंके पूज्य बन बैठे हैं। ये लोग अपनेको टोडा आदि लोगोंसे अधिक प्राचीन मानते हैं। इनकी बोली—समझना अति दुष्कर है। इनके यहाँ विवाह कृत्य जैसी कोई वस्तु नहीं होती है। ये लोग अपने मुर्दोंको कभी जलाते और कभी गाड़ते हैं जैसा ही अवसर मिला। इनकी भी तीन उपजातियाँ हैं। मुल्ला कुरुम्वा, नया कुरुम्वा, पानिया। कुरुम्वा लोग करीवत्तरया 'भेड़ोंका देव'की पूजा करते हैं। ये लोग मानवताकी सबसे अविकसित अवस्थाके प्रथम प्राणी हैं। इन्हें अभी बाह्य संसारका कुछ भी पता नहीं है। धीरे धीरे ये लोग अन्य जातियोंके संसर्गमें आते जा रहे हैं।

४–जयपुरकी पर्वतीय जातियाँ

श्री एच० जी० टर्नरके कथनानुसार इन पहाड़ियोंमें दो प्रकारकी जातियाँ निवास करती हैं—एक कोलारियन शाखा और दूसरी द्रविडियन शाखा। कोलारियनकी उपजातियाँ गदवास, केरंग, कापस भूमिया, भुंजिया हैं। द्रविडियन शाखाकी उपजातियाँ प्रजा, ध्रुव, वन्रा, कोइस, मतिया, कोंद, कायस, कोंददोरा, खोंद, कोटिया, पेंटिया और मुरिया हैं। जयपुरकी इन जातियोंमें प्रजा लोगोंका मान अधिक है। ये लोग कृषिका कार्य करते हैं। इनमें भी दो भेद हैं एक उच्च माने जाते हैं दूसरे लोग निम्न श्रेणीके। कोंद कापस लोग काफ़ी संख्यामें हैं किन्तु अधिकतर वड़ा कठिन जीवन व्यतीत करते हैं। ये लोग पूर्वी घाटकी ऊँची भूमिपर रहते हैं। तैलगू प्रान्तमें वसनेवाले उच्च वर्णके लोगोंका इनपर अधिक प्रभाव है। वन्रा वंशके लोग गोंड परिवारके माने जाते हैं। ये लोग विगड़ी हुई उड़िया भापाका प्रयोग करते हैं। ये लोग उड़िया लोगोंके लम्बे संसर्गसे अपनी प्राचीनतम भापा खो वैठे यद्यपि उसके अभी भी कुछ शव्द और वाक्य शेष रह गये हैं। भूमिया लोग रामगिरि और वाकगिरि प्रान्तमें रहते हैं। भुंजिया भी यहीं रहते हैं। इन जातियोंके वहुतसे लोग अव भी इधर उधर घूमते हुए पाये जाते हैं और अपना जीवन प्राचीन पद्धतिपर अव भी अवलम्वित किये हुए हैं।

राज गोंड और ध्रुव गोंड जयपुरकी प्रधान तथा सम्मानित जाति हैं। राजगोंड उड़िया तथा छत्तीसगढ़ी भाषाका प्रयोग करते हैं। ये मध्यप्रान्तके राजगोंड परिवारके ही हैं किन्तु यहाँ इनकी अवस्था अधिक समुन्नत है जहाँतक कि सामाजिक स्थितिका सम्वन्ध है।

कोइस जातिके लोग निज़ाम राज्यमें वसते हैं। इनकी भी भाषा वही है जो गोंडोंकी। किन्तु सभ्यताके नाते ये लोग वहुत पिछड़े हुए हैं।

केरंग कापस—ये लोग केरंग नामक पौधोंकी छालको वस्त्रकी भाँति प्रयोग करते हैं। अतएव ये लोग केरंग कहलाये। इन लोगोंके यहाँ विवाह प्रथा वड़ी ही

अनोखी है। इनका मुखिया वधूके पिताके घर एक छड़ी लेकर जाता है। उसको वह वहाँ इस प्रकार छोड़ आता है मानो भूल गया हो। वधूका पिता उस छड़ीको लेकर मकानके बाहर फेंक देता है। इसके पश्चात् उसी भाँति वह मुखिया उसके घर फिर जाता है और छड़ी फिर छोड़ आता है। वह फिर फेंक दी जाती है। इसके पश्चात् यदि तीसरी बार छड़ी फेंक दी जाती है तो वह सम्बन्ध अस्वीकृत समझा जाता है अन्यथा उत्सवकी निश्चित् योजना बनने लगती है। सारे परिवार-का भोज होता है और विवाह हो जाता है।

कनाराकी कोरागर जातियाँ

इनका रंग काला बड़ा माथा और शरीरसे खूब सुसंगठित होते हैं। इनका रहन, सहन वेषभूषा रीतिरिवाज, बोलचाल सबसे भिन्न है। ये लोग अपने सिवाय मानों किसीको जानते ही नहीं हैं। बाहरी जगतसे नितान्त अपरिचित तथा स्वभावसे भोलेभाले होते हैं। रेल तार डाक आदि इनके लिए आश्चर्य भरे दैवी कार्य हैं। ये अपने देवको अटूट श्रद्धासे मानते हैं। सम्भवतः भेड़ जैसा भोलापन इनके भीतर पूर्णरूपसे विद्यमान है। झूठ बोलना, चोरी करना, डाका डालना आदिके अस्तित्वका इन्हें ज्ञान नहीं है। जीवनमें इन्हें कभी भी किसी प्रकारकी अदालतमें नहीं जाना पड़ा है। यह बनैली मदिराका पान अवश्य करते हैं किन्तु उसके कारण और पाये जानेवाले दुर्गुणोंसे दूर हैं। ये मांस खाते हैं क्योंकि यही इनका आधार है। यही इनके जीवनको टिकाये हुए है। संसारमें जब प्रत्येक प्राणी उन्नति और अभ्युदयकी ओर अग्रसर है तब भी यह लोग अपनी दासता और ग़रीबीमें ही कितना सन्तोष किये बैठे हैं यह कथनकी सीमासे बाहर है। इनकी मानों सभी ईष्णाएँ समाप्त हो गई हैं। मरे हुए जानवरोंका मांस खानेमें न मालूम इन्हें कितना अधिक स्वाद मिलता है कि इसके पश्चात् इनकी सभी भूख, मिट जाती है। चन्द चियड़ोंमें ही ये राजसी वस्त्रों जैसा आनन्द मनाते हैं। आप इन्हें धिक्कारिए, समझाइए, लेक्चर दीजिए, परिवर्तनका प्रयत्न कीजिए पर वे भाग जावेंगे यह कहते हुए कि हम बड़े आनन्दमय जीव हैं। हमें ग़रीबीका महान सुख है। इनकी इस प्रकारकी अनुभूति ही इनके भाग्यका फ़ैसला किये बैठी है।

इनकी बोली इतनी विचित्र है कि उसको ये ही लोग जानते और बोलते हैं। यदि कोई कभी प्रयत्न करे कि इनका कोई शब्द इनसे मालूम कर ले तो यह बिगड़ उठते हैं। बस यही एक ऐसा अवसर है जब इनमें क्रोधकी छाया दीख पड़ती है। इनकी बोली कोई न ले सके, न जान सके इसीमें इनका परम्परागत गौरव छिपा हुआ है। यही इनकी ऐसी सम्पत्ति ज्ञात होती है जिसकी रक्षा इन्होंने पूर्ण रूपसे की है। इनके कभी परस्पर बोलनेसे ऐसा स्वर ज्ञात होता है कि इनकी बोली कुछ कुछ कैकादी और नयकुन्दी गोंडीय बोलियोंसे मिलती जुलती है जो नागपुरमें बोली जाती है।

इनके वस्त्र बिल्लवारोंसे मिलते जुलते हैं। कमरपर एक फटा चिथड़ा लगाये हुए जीवन बिता देते हैं। स्त्रियाँ अपने बदनके ऊपरी भागमें पत्तियोंको एक प्रकारसे बुनकर पहिनती हैं। इसीमें इन्हें अपार सन्तोष है। चन्दा प्रान्तमें भी ये लोग सिरपर कोई चीज़ नहीं पहनते हैं। इन्हींकी एक उपजाति है जो मदिपान कहलाती है। इनकी स्त्रियाँ तक किसी भी प्रकारके वस्त्र नहीं पहिनती हैं। केवल मात्र पत्तियोंसे अपने गुह्य अंगोंको ढँक लेती हैं। बस्तरमें इन्हें झोरियाके नामसे पुकारते हैं। यही दशा चेंचवा लोगोंमें भी पाई जाती है जो मछलीपट्टमके जंगलोंमें रहते हैं।

विवाह प्रथा इनकी भी बड़ी विचित्र है इनकी पत्नी सदैव अवस्थामें छोटी होती है। विवाह संस्कार वरके घरपर ही होता है। रविवारका दिन इनके लिए शुभ माना जाता है। इनका उपास्य देवता सूर्य है। इनके परिवारका वृद्ध पुरुष इनके विवाहोत्सवका मुखिया होता है। वर वधू शीतल जलसे स्नान करते हैं। मुखिया एक चटाई बिछाता है। उसीपर वर वधू आमने सामने बैठते हैं। दोनोंके हाथमें चावल होता है। सूर्य देवताकी उपासना की जाती है। मुखिया कुछ धानके बीज लेकर वर वधूके सिरोंपर छिड़कता है। पश्चात् बारी बारी सब लोग वर वधूपर धान छिड़कते हैं। पुरुषोंके पश्चात् स्त्रियाँ भी यही करती हैं। इसके पश्चात् वर वधूको भेंट देता है जो कि प्रायः चाँदीकी बनी हुई कोई वस्तु होती है। प्रायः वरकी ओरसे छः दावतें दी जाती हैं जिसमें सभी लोग खूब खाते और मदिरापान करते हैं। इस प्रकार इनका विवाहोत्सव समाप्त होता है।

इनके अन्दर तीन जातियाँ होती हैं। अन्देकोरागर जो सबसे भिन्न समझे

जाते हैं और जिन्हें सड़कोंपर थूकनेका भी अधिकार नहीं। ये लोग कनारा प्रान्तसे अब प्रायः लुप्त हो गये हैं।

(२) वस्त्र कोरागर—इन्हें नये वस्त्र पहिननेका अधिकार नहीं है। मुर्दोंपर इस्तेमाल किये कपड़े पहिननेको मिलते हैं। इनकी संख्या भी अब लुप्त होती जा रही है।

(३) सप्पू कोरागर—श्री राघवेन्द्ररावजी[1] लिखते हैं—"ये कोरागर वही हैं जिन्हें हम वस्त्रोंके बदले पत्ते पहिने हुए पाते हैं। ये तीनों जातियाँ अपने वस्त्र धारणके कारण इन नामोंसे पुकारी जाती हैं। इनकी उपासनाके लिए कोई मन्दिर नहीं होते वरन कसक्कना वृक्षके नीचे एक स्थान बना लिया जाता है जिसे ये लोग कताके नामसे पुकारते हैं यहींपर ये लोग पूजा आदि करते हैं। इनमें सूर्य पूजा प्रचलित है। चैत्र, आषाढ़, भादोंमें इनके धार्मिक उत्सव अधिक होते हैं। पत्तोंपर भात रखकर ये लोग भूतादिकी पूजा करते हैं और उन्हें मानते हैं। कोरागर लोग हिन्दुओंकी परम्परासे प्राचीन कालसे ही प्रभावित हैं। ये कृष्ण-जन्मोत्सव बड़े धूमधामसे मनाते हैं। दास क्रय विक्रयकी प्रथाका इनमें अधिक प्रचलन रहा है। इसकी पूर्ण विधि निम्न है—भावीदासको स्नान करवाया जाता है, तेल मालिश होती है, और उसे नये कपड़े दिये जाते हैं। खरीदनेवाला मालिक एक पात्रमें पानी लेता है और उसमें सोनेका एक टुकड़ा डालता है। दास उस पानीको पी जाता है। पश्चात् अपने भावी मालिककी भूमिसे कुछ मिट्टी लेकर उस स्थानपर फेंक देता है जहाँ उसे रहना होता है। उसे इस भूमिमें उगे हुए पेड़ आदि भी दे दिये जाते हैं। दासोंकी अधिक संख्या अलियासंतानम् जातियोंमें ही पाई जाती है। इनके यहाँ पुरुष दास तीन भौवरी पैंगोडामें और स्त्री दास पाँच पैंगोडामें बेंचे जाते हैं। मक्कला सनातम रीतियोंके अनुसार पुरुष पाँच और स्त्रियाँ तीन पैंगोडामें बेंचे जाते हैं। यह इसलिए है कि बादमें पुरुषोंके साथ बच्चे भी जाते हैं। और अलियासन्तानम्में बच्चे स्त्रियोंके साथ जाते हैं। मालिकको यह अधिकार होता है कि वह उन क्रीत दासोंको चाहे भाड़ेपर

---

[1]"Raghavendra Rao, Pamphlet on Koragars, P. 343, 345."

ठावें अथवा रहन रक्खें अथवा अपनी सेवामें रक्खे।" इसके अतिरिक्त, दक्षिणी नारामें निम्न जातियाँ और पाई जाती हैं जो अधिकतर जंगल और पहाड़ी ान्तोंमें भटकती फिरती हैं। कुनाली, मली कुनाली, नाद कुनाली, करी कुनाली, ुरी इत्यादि। इनकी संख्याका अनुमान लगाना प्रायः दुष्कर है।

५—मद्रास प्रान्तके वनवासी

[मद्रास प्रान्तकी मुख्य वनवासी जातयाँ टोडा (नीलगिरिकी पहाड़ियोंमें) कोटा, वेदगा, टूला, चेंचु, कुरुम्वा, परियान, नायादी, लम्बाडी, यरकल, यनादी आदि हैं। यहाँकी कुछ जातियाँ जैसे टोडा, चेंचु धीरे धीरे लुप्त होती जा रही हैं।]

यदि मैं यह कहूँ कि वनवासी लोग भारतके सब लोगोंसे, जिनमें हरिजन भी आ जाते हैं—ग़रीव हैं तो यह अत्युक्ति कदापि न होगी।

—ठक्कर वापा

यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रान्तके वनवासी लोग स्वत: इसी प्रदेशके आदि जन्मा हैं अथवा कहीं वाहरसे रमते रमते यहाँ आ वसे। कारण यह है कि इनकी वस्तियाँ कहीं भी स्थाई रूपसे नहीं पाई जाती हैं वरन् इनका घुमक्कड़ी जीवन आज भी ज्योंका त्यों देखा जाता है। सम्भव है यह लोग इधर उधरसे आकर यहाँ ठहर गये हों क्योंकि इनकी विभिन्न जातियाँ कई प्रान्तोंमें ऐसी पाई जाती हैं जिनका जीवन वहुत कुछ समान दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस प्रान्तके वनवासी लोगोंकी अगणित जातियाँ है जिनका प्रसार समीपी प्रान्तों तक फैला हुआ है। इन वनवासी मनुष्योंकी एक प्रमुख जातिको तामिल भापा भापी पारिया या पारियानके नामसे पुकारते हैं। तैलगू भाषामें इन्हें 'मल' और कनाड़ी भाषा भाषी इन्हें होलियाके नामसे पुकारते हैं। इन लोगोंका रंग अधिकांश काला होता है। ये लोग वड़े परिश्रमी जीव होते हैं। जंगलों वनों और घने जंगलोंके पास इनकी छोटी छोटी झोपड़ी होती है जहाँ ये लोग रहते हैं। अधिकांश वनैली वस्तुओंपर ही इनका जीवन निर्वाह होता है कहीं कहीं जहाँ इनकी वस्तियाँ अधिक हैं वहाँ थोड़ी मात्रामें ये लोग खेती भी करते हैं। फिर भी ये लोग स्थायी रहनेके आदी नहीं हैं। चलते फिरते रहनेमें इन्हें अधिक आनन्द आता है। अर्काटके दक्षिणी भागमें तो इनकी संख्या इतनी अधिक है कि वहाँकी तमाम हिन्दू जनसंख्याके १।४ एक चौथाई यही लोग हैं। चूंकि इनका रहन सहन सदैव वदलता

रहता है अतः इनके रीति रिवाज भी एक ही जातिमें विभिन्न विभिन्न हैं। फिर भी ये लोग किसी विशेष धार्मिक परम्पराके ज्ञात नहीं होते हैं। इनके ग्राम्य देवता भी अलग अलग होते हैं। आसपासकी बड़ी बड़ी बस्तियोंका भी प्रभाव इनपर पड़ा है। कुछ द्रविड़ प्रथाओंका इनमें प्रचलन अवश्य पाया जाता है। संभवतः इसी आधारपर डाक्टर कैल्डवेलने अनुमान किया है कि ये लोग द्रविड़ परिवारके ही हैं। किन्तु यह निर्णय किन्हीं विशेष प्रमाणोंपर स्थिर ज्ञात नहीं होता है।

मिस्टर नेलसनने इस प्रान्तके वनवासियोंकी विभिन्न जातियों एवं फ़िरक़ोंका पता लगाया है। उनमेंसे कुछ ये हैं:—

१ वल्लुवान परियान—ये लोग परियान जातिमें सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं और अन्य सभीके गुरू कहे जाते हैं। तोरु वल्लुवान नामक तामिल कवि बहुत ही प्रसिद्ध है।

२ तान परियान—ये लोग अधिकतर चलते फिरते लोग हैं। एक जगहसे दूसरी जगह घूमते रहना इनका स्वभाव है। अधिकतर भिक्षा वृत्तिपर ही इनका जीवन निर्वाह होता है। माँग माँगकर खाना और गा बजाकर लोगोंको प्रसन्न करना इनका रातदिनका कार्य है।

३ तंगलाना—ये लोग परियान जातिके वह लोग हैं जो अधिकतर अन्य विशिष्ट जातियोंके यहाँ नौकरीचाकरी करने लगे हैं। अथवा थोड़ा बहुत व्यौपार भी करते हैं तथा कुछ दस्तकारीके कार्योंमें भी लग चुके हैं।

४ दुरयाली परियान—ये लोग अधिकांश वनैली वस्तुओंपर ही निर्वाह करते हैं। तीव्र भूखमें यह लोग मेढक सियार आदि जीवोंको भी नहीं छोड़ते हैं। पेटकी ज्वाला और इनके अविकसित जीवनने इन्हें ऐसा करनेके लिए विवश सा कर दिया है। किन्तु ऐसे लोगोंकी संख्या अब नहींके बराबर होती जा रही है।

५ तिया परियान और मरासू परियान—ये लोग मलाबार प्रदेशमें पाये जाते हैं और इनका जीवन बहुत कुछ बदल चुका है।

६ अम्बू परियान—ये लोग अब भी शिकारपर ही जीते हैं। वनवासी होनेके नाते वनैले जन्तु ही इनके आहार हैं। इनके धनुष बाण घने घने वनोंके बीच टंकारते रहते हैं और आज भी यहाँके वन इनके पैरोंके नीचे बने हुए हैं। ये धनुष बाणके चलानेमें जन्मसे ही अभ्यासी जीव ज्ञात होते हैं।

७ वेदुगा परियान—ये लोग अधिकांशमें तैलगू प्रान्तमें पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अलियावाली (जो अधिकतर चिड़ियोंको पालने और पकड़नेका काम करते हैं) वेहियान, कोलिया (जो कि जुलाहेका काम करते हैं) पेसम, इकाली (जो कि धोबीका काम करते हैं) कुदी पिल्ली (जो नाईका काम करते हैं)पोला तिन्नुम, सन्कु, चकलर, चेरमर आदि ३० ३२ फ़िरक़े और ऐसे हैं जो कि इन्हीं वनवासियोंके अन्तर्गत पाये जाते हैं। जिनका जीवन अभीतक विकसित नहीं हो पाया है। मानव तनधारी ये लोग भी मानव जगतके मूक प्राणी हैं। कहा जाता है कि इस प्रान्तमें इन लोगोंको इतना अस्पृश्य समझा जाता है कि इन्हें अपने आपको एक नायर (उच्च कुलीन)से ३२ वत्तीस फ़ीट दूर रखना पड़ता है और एक ब्राह्मणसे ६४ चौंसठ फ़ीट दूर रखना पड़ता है अन्यथा इसके विपरीत होनेपर इनके साथ वड़ा दुर्व्यवहार किया जाता है। अपनेको मनुष्य और ईश्वरकी सृष्टिका विशिष्ट प्राणी समझनेवालेके लिए क्या यह एक कलंक-की बात नहीं है कि वह एक मानव तनधारी प्राणीके प्रति ऐसा अमानव व्यव-हार करे और ईश्वरकी उसी कृतिके प्रति अनुचित घृणा प्रदर्शित करे।

अर्काट और नीलोरके पड़ोसी

इस प्रान्तके वनवासी 'इरुलर' या पुजारी नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग अधिकतर पर्वतीय और वनैले प्रदेशमें ही अपना अड्डा जमाये हुए हैं। मामूली झोंपड़ियाँ और पास पासके सघन जंगली वृक्षोंकी छाया ही इनके विश्राम गृह हैं। ये ही घर इनकी छोटी छोटी वस्तियोंमें वने हुए हैं। अधिकतर ये लोग जंगलकी वनस्पतियों और जड़ी वूटियोंका ही प्रयोग करते हैं और अपनी क्षुधाकी पूर्त्ति करते हैं किन्तु हर एक मौसममें ऐसा जव सम्भव नहीं होता है तो कीड़े मकोड़े साँप, विच्छू सियार लोमड़ी आदिको भी खाकर भस्म कर जाते हैं। ऐसा करनेमें ये लोग किंचित मात्र भी नहीं हिचकते हैं। ये लोग कुछ वनस्पति और वृक्षोंकी गोंद और अन्य वनैली वस्तुएं इकट्ठा करके सभ्य वस्तियोंमें भी वेचनेके लिए ले जाते हैं। किन्तु ये लोग रुपये पैसेको न तो मूल्यवान समझते हैं और न उसका व्यवहार करते हैं। वस्तुके वदलेमें वस्तुकी लेन देन ही ये समझते हैं। ये अपनी वस्तुओंके वदलेमें कुछ खाने पीनेकी वस्तुएँ नमक आदि पा जाते हैं। यही इनका व्योपार है। इस व्योपारमें रुपये पैसेका मूल्य इनके लिए वेकार है। ये तम्बाकूके

वहुत शौक़ीन होते हैं और अधिकतर तम्बाकू पाकर वहुत प्रसन्न होते हैं। वनवासी जीवनमें अभ्यस्त होनेके नाते ये लोग बड़े बड़े ऊँचे पेड़ोंपर बातकी बातमें चढ़ जाते हैं। इनके पास वस्त्र तो नाम मात्रके लिए होते हैं। इनकी स्त्रियाँ कमरके ऊपर कोई भी वस्त्र नहीं पहनती हैं। इनके यहाँ कोई व्यवस्थित और निश्चित प्रथाएँ नहीं हैं। फिर भी देवी देवताओं, भूत प्रेतोंको पूजते हैं। बीमारियोंसे वहुत डरते हैं। मृत्यु होनेपर ये लोग मुर्दोको अधिकतर ज़मीनमें गाड़ते हैं।

यरकल—ये लोग नीलोरके आसपास पाये जाते हैं। ये कोरा घुमक्कड़ी फ़िरक़ा है। इनकी संख्या भी वहुत कम है। इनका रंग अधिकांशमें काला होता है किन्तु शरीरके वड़े मज़वूत होते हैं। फुर्तीले भी खूव होते हैं। ये लोग मांसाहारी हैं तथा कुछ अन्य वस्तुओंको वेचकर भी पेट पालते हैं। यह सव कुछ न होनेपर पेटकी ज्वाला वढ़नेपर ये आसपासके गाँवोंमें डाके भी डालते हैं और खाने पीनेकी वस्तुओंके अलावा वस्त्र आदि उठा ले जाते हैं। ये लोग स्वभावके वड़े कड़े होते हैं। मैले कुचैले रहनेमें शायद यह लोग प्रथम श्रेणीमें रखने योग्य व्यक्तियोंमें से निकलेंगे। वस्त्र आदिका भी प्रयोग कम करते हैं और नंगा रहनेमें किसी प्रकारकी लज्जा महसूस नहीं करते हैं। इनके भीतर कोई विशेष तथा विशिष्ट प्रकारकी वैवाहिक प्रथा नहीं है। इस सम्वन्धके लिए एक प्रकारसे स्वच्छन्दता है।

सुकाली और लम्बाड़ी

ये लोग भी नीलोरके आसपास ही पाये जाते हैं। ये नशीली वस्तुओंके वहुत ही शौक़ीन होते हैं। वनजारेकासा जीवन व्यतीत करते हैं। कनारा प्रदेशमें ये लोग अधिकतर रहते हैं। कुछ स्थानोंके लोग जो मराठी वोली वोलते हैं अपने आपको मराठा कहते हैं। किन्तु नीलोरी प्रान्तमें ये लोग चलते फिरते ही दृष्टि-गोचर होते हैं। ये लोग आसपासकी वस्तीसे जानवरोंकी चोरी भी कर लिया करते हैं। लेकिन अधिकतर ये लोग अनाज एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जानेका काम करते हैं और अपना परिश्रमी जीवन व्यतीत करते हैं।

यनादी

ये लोग कृष्णा नदीके दक्षिणी तटपर स्थित वन प्रदेशके रहनेवाले हैं। यह वनप्रदेश घना पर्वतीय जंगल है। कहा जाता है कि १९वीं शताब्दी तक तो ये

लोग इतने पिछड़े हुए थे कि वस्त्र, चावल आदिको जानते तक न थे। आहार इनका मांसाहार था और यही वन प्रदेश इनकी लीलाभूमि थी जहाँ ये अपने जंगली जानवरोंके साथ उनके सहयोगी वनकर विचरा करते थे। जंगली फल आदिपर ही भरोसा करते थे। पेड़ोंकी घनी छाया ही इनके विशाल विश्राम गृह थे। सन् १८३५में श्री हरिकोटि नामका एक स्थान वसाया गया जहाँ इन लोगोंने पहले पहल अड्डा जमाया और घर वनाकर रहना सीखा। यह लोग क़दके छोटे होते हैं और अब नीलोर प्रान्तमें छोटी छोटी वस्तियाँ वसाकर रहते हैं। ये लोग अपनी प्राचीन परम्परासे इतने अधिक निकट हैं कि अपना कठोर स्वभाव आजतक छोड़नेको तैयार नहीं। ये लोग वकरेको मारने और मनुष्यको मारनेमें कोई अधिक भेद नहीं महसूस करते हैं। हिंसक प्रवृत्ति इनका एक प्रधान गुण है। ये अधिकतर विगड़ी हुई तैलगू भाषा वोलते हैं। इधर इनमें काफ़ी परिवर्तन होता जा रहा है और अपनी मूल प्रकृतियोंको छोड़ते जा रहे हैं। इनकी वोली असंस्कृत तथा तैलगूसे विगड़ी हुई है।

चेन्तसु या चेन्यु—ये लोग कुर्नूल प्रान्तमें पाये जाते हैं। अपने पड़ोसियोंकी भाँति रहन-सहनमें यह भी ज्योंके त्यों हैं। किन्तु पूर्व कथितसे शान्ति प्रिय होते हैं। ये नंगें वदन तीर कमान चढ़ाए प्रधानतः शिकार खेलते हुए, चौपाए पालते हुए और वनैली वस्तुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थान ले जाते हुए दिखाई देते हैं। छोटी छोटी गुफाओंकी आकारकी झोपड़ियाँ वनाकर रहते हैं। इनका रंग काला तथा वालोंके जूड़े, वाँधे हुए रहते हैं। ये लोग स्वभावतः घने जंगलोंको छोड़ना पसन्द नहीं करते हैं। घने जंगलवासी चमड़ेकी टोपियाँ पहिने हुए भी दिखाई देते हैं।

मलसर (Mulcer) नामक जातिके लोग कोयम्वटूर मलावार, कनारा पहाड़ियोंमें यत्र तत्र घूमते हुए पाए जाते हैं।

डोम्मर—ये लोज वाजीगर होते हैं। ये टुकड़ोंमें घूमते हुए वड़ी वड़ी लम्वी यात्राएँ किया करते हैं। अपने अद्‌भुत खेलोंसे लोगोंको प्रसन्न करते हैं। ये लोग पोलारिया माँको पूजते हैं। शिकार भी समय पड़नेपर करते हैं। वस्तियोंमें अधिक आने जानेके कारण काफ़ी व्यवहार-कुशल होते हैं। मलावारमें कुल्यर और पिरवन्न, कोरत्रा, वलोरी प्रान्तमें वुदवुद, जोनी, कुमारी, पेलावर, पामवत्तर, तोम्वीरन, विली आदि छोटी छोटी जातियाँ भी वड़ी वड़ी जातियोंमें विल्कुल हिल मिल गई हैं।

कोरवर

कर्नाटक प्रान्तमें ये लोग पाये जाते हैं। उत्तरी अर्काटमें ये लोग अपने महाजनको ऋणसे मुक्त होनेके लिए अपनी अविवाहित पुत्रियाँ तक दे डालते हैं। पचास-साठ रुपयमें भी स्त्रीका क्रय-विक्रय कर लेते हैं। मदूरा और दक्षिणी अर्काटमें ये लोग व्यापार भी करते हैं। छोटी छोटी चीजें भी वनाते हैं अधिकतर सुअर तथा गदहोंको पालते हैं। ये लोग मादक वस्तुओंका वहुत व्यवहार करते हैं।

वेदन—सम्भवतः लंकाके वेद्द्र जातिके भाई-वन्धु हैं। ये दक्खिनी भारतमें ही पाये जाते हैं। इन लोगोंको दक्षिणमें सवसे अधिक कोप-भाजन होना पड़ता है। ये लोग आदिम अवस्थाके विल्कुल समीप हैं इनकी संख्या दिनोंदिन तेज़ीसे घटती जा रही है। सम्भव है कुछ दिन पश्चात् इनका नाम ही रह जाये। अन्य धर्मावलम्वी लोगोंका इनपर पूरा पूरा हाथ है।

कुरुवम्न—दक्षिणी भारतमें अपने भोलेपनके लिए वहुत प्रसिद्ध हैं। तामिल, कनारा, तेलगू प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। इनका वास्तविक व्यवसाय गड़ेरियों जैसा है। कुछ लोग खेती आदिकी शरणमें भी हैं। ये लोग अपेक्षाकृत अधिक शान्त तथा परिश्रमी होते हैं।

पोलियन—मलावारके तटपर और पलानी पर्वतीय प्रदेशमें ये लोग फैले हुए हैं। इनके रीतिरिवाज वड़े सीधे-साधे होते हैं। माताकी वीमारीका इलाज इनका वड़ा विचित्र है—जिसे माता निकलती है वह अकेला भाग्य भरोसे छोड़ दिया जाता है। वस्तीमें लकीर खींच दी जाती है। उस लकीरकी दूसरी ओर पार करके कोई नहीं जाने पाता है। लोग वस्ती तथा घर छोड़ जाते हैं जवतक या तो आदमी मर न जाय अथवा अपने आप ठीक न हो जाय। ये लोग अपने मुर्दोंको गाड़ते हैं।

कनियार—ये लोग इतने पतित समझे जाते हैं कि उच्च जातिके व्यक्तिसे सदैव कमसे कम २४ फ़ीट दूर रहने दिये जाते हैं। पास नहीं आ सकते।

पल्लियार—ये लोग मदुराके जंगल और कर्सनादमें घूमते हुए पाये जाते हैं। मिस्टर नेल्सनने इनके विषयमें लिखा है कि "ये लोग निरे जंगली जातिके हैं। इनके न कोई मकान है न सम्पत्ति, न इन्हें वस्त्रसे प्रयोजन है न किसी अन्य वस्तुसे। अपनी भूख अधिकतर वनैले फल आदि और शिकारसे पूरी करते हैं।

ये लोग सभ्य वस्तियोंकी ओर कभी नहीं आते हैं और यदि आते भी हैं तो डरे हुएसे सो भी तम्बाकू और कुछ चिथड़ोंके प्रयोजनसे।"

किन्तु यह वर्णन अव इस प्रान्तमें देखनेको नहीं मिलता है। सम्भव है ये लोग इधर उधरकी अन्य जातियोंमें मिलकर अपनी मूल प्रवृत्तियोंको खो वैठे हों। नायादी अथवा नागादी—इनका भोला जीवन विचित्र ही है। इनके पास न भूमि है और न शिकारके लिए कोई औज़ार। वन या वस्ती जहाँ कहीं इन्हें जड़ी बूटी और भिक्षा मिली, वहीं दिखाई पड़ते हैं। दूर दूर तक यात्रियोंका पीछा नहीं छोड़ते और कुछ मिल जानेपर वड़े प्रसन्न होते हैं। भयकी भावनासे ओत-प्रोत यह यात्रियोंसे वहुत दूर खड़े होते हैं। कमसे कम ९६ फ़ीट दूर रहना इनके लिए निश्चितसा है। ये वाज़ारोंमें कम जाते हैं। जो कुछ इन्हें मिलता है, कहीं दूर पत्थरके नीचे एकत्रित करते हैं। ये लोग मलावारमें अधिकतर पाये जाते हैं। ये लोग क़दके छोटे, रंग स्याह, वाल घुँघराले और दुवले पतले जातिके होते हैं। सवसे विचित्र वात इनके विषयमें यह है कि इन लोगोंका नाम ब्राह्मणों जैसा होता है। सम्भवतः किसी समय ब्राह्मण समाजसे च्युत लोगोंमेंसे हों जो आजकल विछुड़े पड़े हैं और आज विधर्मियोंके फन्देमें प्रसन्नतापूर्वक फँसते जाते हैं। अधिकतर मोपला लोगों द्वारा प्रचारित धर्ममें प्रविष्ट हो गये हैं और हो रहे हैं।

इन्हीं ऊपर वर्णित की हुई जातियोंसे ही सम्वन्धित और मिलती जुलती मैसूरमें लगभग वारह जातियाँ ऐसी रहती हैं, जिनका जीवन भी वन-प्रदेश और अपने अन्य सहयोगियों जैसा ही है। ये जातियाँ अव एक दूसरेमें ऐसी मिलती जाती हैं कि थोड़े दिनोंमें इनका अतीत एक कल्पनाकी वस्तु हो जायगा। ये लोग अव दिनोंदिन वदलते जा रहे हैं। फिर भी इनका नाम इस प्रकार है—इरालिगा, वेदा, कुरुवा अथवा काटू, (मैसूरके दक्षिणी-पश्चिमी जंगलोंमें जेनु कुरुवा सोलिगा, हसुलर, परवा, विल्व) वस्तर प्रान्तमें पनियार, अरिकार, मतारु और मसालर इत्यादि।

६—ट्रावनकोरकी पिछड़ी जातियाँ

[वनवासी भाइयोंकी बहुतसी उपजातियाँ हैं जैसे—मलपन्तरम, मुथुवंश, द्रालिश, पलियान, मलयरायन्स, कम्पिलयन, अशशि, उल्लतन, कन्निकर, मलवेतान आदि। मुख्य उपजातियाँ वल्वा, कनक और मुन्री पुलयान हैं। ये लोग परिश्रमी होते हुए भी दरिद्रताके शिकार हैं तथा समाजने आज भी इनपर मानवीय दया दिखानेकी कृपा नहीं की है।]

पुलयान अथवा पुलयार नामकी जातियाँ यहाँ इस प्रकारकी हैं, जिनपर आज समयसे दुर्व्यवहार हो रहा है। इनकी तीन उपजातियाँ हैं, (१) वल्वा (२) कनक (३) मुनी पुलयान। ये लोग दूर दूर फटी टूटी झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। ग़रीबी इनका मित्र है। खेतिहर लोगोंकी मज़दूरी करते हैं और जो कुछ अनाजके रूपमें ये लोग पा जाते हैं, उसीसे पेटपूजा करते हैं। इनको अपने परिश्रमका दसवाँ भाग भी नहीं मिलता है। जब ये भूखों मरने लगते हैं तब चोरी करनेपर भी उतारू हो जाते हैं। कभी कभी ऐसे कृत्योंके ये लोग आदी बन जाते हैं। निरक्षरताका इनमें अटूट राज्य है। ईसाई मिशनरी इनमें अच्छी तरह पैठ सके हैं। इसका पता हमारी बाहरी दुनियाको क्या है?

ये लोग कमरमें एक चिथड़ा पहिनते हैं तथा दाढ़ी और सिरपर छोटा लम्बा कपड़ा लपेटते हैं। ये लोग न तो जूते पहिन सकते हैं न छाता लगा सकते हैं। इनकी स्त्रियाँ केवल पीतलके आभूषण पहिन सकती हैं। ये अपने आपको पुकारते समय 'आपका दास' 'आपका ग़ुलाम' ही कह सकते हैं, 'मैं' या 'हम' नहीं। अपने मकानोंको सुन्दर नहीं बना सकते हैं, मानो विधाताने इन्हींके लिए 'टूटी झोपड़ियों'-की सृष्टि की हो। सभी बच्चे हर एक प्रकारकी दासतासे जकड़े हुए हैं। यहाँ तक कि जब ये बातचीत करते हैं तब इन्हें अपना हाथ मुँहके सामने करना पड़ता है, ताकि मुँहकी हवा कहीं सामनेवाले मनुष्यको न छू ले। उन सड़कोंपर स्वतन्त्रतापूर्वक ये लोग नहीं चल फिर सकते जिनपर उच्च वर्गके लोग फिरते हैं। बेचारेको हर समय चिल्लाते हुए चलना पड़ेगा और दूर दूर भागना पड़ता है नहीं तो कहीं

उसकी परछाहींसे उच्च वर्गके लोग अछूत न बन जावें। यदि दैवात् कभी ऐसा हुआ भी तो वह अभागा उन क्रूरोंके क्रोधका शिकार बन जाता है। विधान इस प्रकार है कि एक पुलयान ६६ क़दमकी दूरीपर सड़कपर चले जब कि उच्च वर्गके लोग आते जाते रहें। जब कि वह इस प्रकार बस्तियोंमें भली प्रकार नहीं चल फिर सकता तो फिर उसके लिए एक ही कार्य शेष बचता है कि दूरके खेतोंमें ही कठिन कार्योंमें जुता रहे जिसका मूल्य भी स्वामीकी इच्छापर ही निर्भर रहता है। हम दानवीय मानवोंकी दृष्टिमें उनकी वायुसे ही सब वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। ये लोग कभी कभी छाता आदि चीज़ें बनाते हैं, उन्हें भी ये पूरे दामोंमें नहीं बेच सकते हैं। ये अपनी बनी बनाई चीज़ एक अलग स्थानपर रख देते हैं व्यापारी आते हैं और उठा लेते हैं और उसी जगह पैसे रख देते हैं। बनिया आता है। पैसा उठा लेता है और वांछनीय सामान वहाँ रखकर चला जाता है। पुलयान तो बेचारा द्रष्टाकी भाँति यह सब कुछ होते हुए देख सकता है, किसी भी प्रकारकी दस्तन्दाज़ी नहीं कर सकता। फिर भी अपने आपको सराहता हुआ लेकर चल देता है।

इस प्रदेशमें तथा इनके जीवनमें काफ़ी अन्तर और परिवर्तन हुआ है, किन्तु स्मरण रखिए—विदेशी मिशनरियों द्वारा न कि उन लोगों द्वारा जिनके ऊपर इनका उत्तरदायित्व था। हमारी संस्थाएँ तो आज सब कुछ देखते हुए भी नहीं चेतना चाहती हैं।

७–आसाम प्रान्तकी वनवासी जातियाँ

[उड़ीसाके पश्चात् आसाम ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ वनवासियोंकी संख्या काफ़ी है। आसाम प्रान्तकी कुल आबादीकी गणनामें ये लोग २२ फ़ी सदी हैं। यहाँकी वनवासी जातियोंमें भूतिया, अका, डफला, अवोर, मीरिस, सिंगको, जंतिया, लोशाई, कचारी, मनीपुरी, गारो, नागा, हंगामी, सेमा, ल्होता, कोन्यक, कूकी आदि मुख्य हैं। इस प्रान्तके भयावने जंगल और घनी घाटियाँ ही इन लोगोंकी आवास भूमि हैं।]

हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि दस वर्ष वाद वनवासी लोग हमारे ही स्तरपर आ जायँ और 'ट्राइव' शब्दको ही हटा दिया जावे। 'ट्राइब्स' के लिए पृथक् प्रवन्ध करना भारतीय संस्कृतिके लिए शोभनीय नहीं है।

सरदार वल्लभभाई पटेल

आसाममें जहाँपर वनवासीजन वास करते हैं वह प्रदेश तीन भागोंमें विभाजित है—१—पहाड़ी प्रान्त—२—सीमान्त प्रदेश—३—देशी रियासतें—प्रथम भागमें खासी और जयन्तिया पहाड़ियाँ, गारो और नागा पहाड़ियाँ तथा लुशाई पहाड़ियाँ आती हैं। द्वितीय भागमें वालीपारा सीमाप्रान्त, सदिया और तिराप सीमाके ज़िले आते हैं। तृतीयमें खासी रियासतें और मनीपुरका राज्य आता है। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और जाति-तत्त्वके अनुसार ये वनवासी जो उपर्युक्त प्रदेशोंमें रहते हैं शेष आसाम प्रान्तसे ही सम्वन्धित हैं। राजनैतिक कारणोंसे ये लोग दूरकर दिये गये हैं। "नागा लोगोंकी आम भाषा अभीतक अशुद्ध आसामी भाषा ही है" (सेंसस रिपोर्ट १९३१) नागा, भूतिया, डफला, मीरिस और मिकीर लोग अपना सामान लेकर तराईमें चले आते हैं और क्रय-विक्रय करके पुनः अपने पहाड़ी प्रदेशको लौट जाते हैं। नीचेसे वहुतसे व्यापारी जाकर वहाँ व्यापार करते हैं। यहाँ लकड़ी, हाथी, कपास, फल, आलू, और खनिज पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है जिसका व्यापार सारे आसाममें होता है। नीचेके भागसे पहाड़ी प्रान्तोंमें खाने पीनेकी वस्तुएँ तथा कपड़ा जाता है। आर्थिक दृष्टिसे

यह वनवासी प्रान्त आसामसे मिला हुआ है और एक दूसरेका पूरक है। नृतत्त्व विज्ञानकी दृष्टिसे भी वनवासी प्रान्तके व्यक्तियोंका शेष आसाम प्रान्तके निवासियोंसे पूरा सादृश्य है। ये वनवासीजन सारे आसामको अपनी जन्मभूमि मानते हैं।

नागा लोग (ऐतिहासिक)

नाग जातिके ऐतिहासिक कृत्य हमारे इतिहासकी वस्तु हैं। सम्भवतः ये लोग उसी नाग जातिके अवशेष अंश हैं जिनका वर्णन हमारे प्राचीन इतिहास पुराणोंमें मिलता है। इनका प्रथम ऐतिहासिक रूप हमें समुद्र मन्थनके समय ज्ञात होता है। इन्हीं नागोंके पूर्वजोंने देवताओंकी सहायता की थी। यदि पुराणों-का अलंकृत रूप निकाल दिया जावे तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि एक वार दैत्य दानवों और इन्हीं नागोंने मिलकर कोई वृहत् समुद्र यात्रा की थी जिसमें इन्हें वहुमूल्य रत्न प्राप्त हुए थे। शेष, वासुकि, तक्षक और धृतराष्ट्र इनके सरदार थे। इन्हींकी सहायतासे समुद्र-यात्राका महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन हुआ। ये पाताल प्रदेशके वासी कहे गये हैं। पाताल प्रदेश दो प्रदेशोंके लिए वहुधा उपयुक्त हुआ हैं। सिन्ध और पूर्वी वंगालके समुद्र तटका प्रदेश—जलके सहारे इनका आगमन गंगा और सरयू तक रहा है। इनका समुद्र तट वासी होना अधिक युक्तियुक्त है, यहाँ तक कि वंगालमें इनकी ही संज्ञा सूचक जातियाँ अव भी उपलव्ध हैं। श्रद्धेय मिश्र वन्धुओंके द्वारा प्रतिपादित ये लोग पूर्वी वंगाल, विहार, नागपुर (छोटा) आदि प्रदेशके वासी थे। विहारमें शिशुनाग वंशियोंका राज्य भी रहा है। इनका समाज वड़ा ही वलिष्ठ था। देवताओं और दैत्योंके युद्धमें इन्होंने देवताओंको सक्रिय सहायता दी थी। इनका और आर्योंका पारस्परिक सम्वन्ध अटूट हो गया था, इसके वहुतसे ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं। आर्य वंशी राजा युवनाश्व और हर्यश्वकी वहिन धूम्रवर्ण नामक नागको व्याही थी। पश्चात् उसकी पाँच कन्याओंका विवाह हर्यश्वके दत्तक पुत्र यदुके साथ हुआ। अर्जुनने नागसुता उलूपीके साथ विवाह किया था, जिससे इरावान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वासुकिकी वहिन जरात्कारका विवाह एक ऋषिसे हुआ था। आसीक इन्हींका पुत्र था जिसने जनमेजयके यज्ञमें नागोंकी रक्षा की। चोल राजा वेण ऋवेकरने पीलवलय नाम्नी नाग-कन्याके साथ व्याह किया। स्वयं श्री कृष्णने वृन्दावनके समीपसे

कालीय नागको सपरिवार खदेड़कर आज्ञा दी कि वह समुद्रके निकट जाकर बसे। नागोंका समुद्र तटवासी होना और भी अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है। ऋषिवर उत्तंकने अपने खोये हुए कुंडल नागोंसे ही छीने। सुरसा नामकी नाग माताने उदधि उल्लंघनके समय देवताओंके कहनेसे हनुमानके वलकी परीक्षा की। वामन द्वारा जव वलि क़ैद किये गये और पाताल भेजे गये तो उनके निरीक्षक नाग लोग नियुक्त हुए थे। कुशान वंशको पराजित करनेवालोंने अपना राज्य स्थापित किया था तथा हिन्दू सभ्यताकी रक्षा की थी।

नागोंकी ही भाँति अन्य वली जातियाँ इसी भारतमें रहती चली आई जिनका आर्योंसे इतना घनिष्ट सम्वन्ध हुआ कि आर्योंको और इन शक्तिशाली जातियोंको विभिन्न नहीं किया जा सकता। दोनोंका जीवन संस्कृति और सभ्यता एक होकर रही। ये जातियाँ निम्न प्रकार हैं——महिष, कपि, नाग, मृग ऋक्ष, राक्षस, व्रात्य, आर्जिक, दैत्य, दानव, कीकट महावृष, व्राल्हीक, भूजवन आदि। इनके आर्योंसे सम्वन्ध अनेकों हुए। संक्षेपमें उदाहरणतः श्रीकृष्णका विवाह जामवन्त नामक ऋक्षकी कन्यासे, रामकी अभिन्नता सुग्रीव हनुमान आदिसे, दैत्य वंशमें हिरण्यकश्यप, व्रजांग अंधक, व्रजनाभि, वली, प्रहलाद, पुलोमा और पुलोमी, मधुदैत्य, आदिकी प्रतिष्ठा, वाण दैत्यकी कन्या ऊषासे कृष्णके पौत्र अनिरुद्धका विवाह, दानवोंमें कश्यपकी स्त्री दनु, राक्षसोंमें मयदानवकी कन्या मन्दोदरी, व्रात्य लोगोंका सवसे प्रथम आर्य धर्म ग्रहण करना। इसी प्रकार और भी दृष्टान्त ऐसे हैं जो इन जातियोंका आर्योंसे घनिष्ठ सम्वन्ध ठहराते हैं।

अव प्रश्न यह है कि वह वीर जाति जिसका अविच्छिन्न सम्वन्ध सनातनसे आर्योंका रहा, आज इस दशामें कैसे आ गई, कि अपनी विगत स्मृतियोंको नितान्त विस्मृत कर वैठी। वास्तवमें मानवकी अमर कृतियाँ ही इतिहासकी सामग्री वनती हैं। इन्हीं कृतियोंका व्यक्तीकरण इतिहास होता है। यही व्यक्तीकरण दो रूपोंमें समाजके अन्तर्गत शेष रहता है। एक तो लेखन-कलाके रूपमें तथा दूसरा समाजके रीति-रिवाजों तथा परम्परागत संस्कारोंमें। जिस जातिके साथ व्यक्तीकरणके दोनों रूप मिलते हैं उनका पूर्ण इतिहास हमें उपलब्ध होता है। अतएव यह निश्चित है कि जिस जातिमें लेखक-कलाका अधिक महत्व रहा, तथा जिस जातिके रीति-रिवाज और संस्कार जितने ही अधिक प्रवल रहे, वे जातियाँ अवतक भी जीवितावस्थामें पाई जाती हैं। उदाहरण स्वरूप संसारमें

ऐसी सहस्रों जातियाँ हैं, जो आज विलुप्त हो गई, कारण यही हैं कि वे अपने इतिहासको सुरक्षित न रख सकीं और अपनेपनके व्यक्तित्वको भूलकर सदैवके लिए दूसरे घरमें दूसरी ही वन वैठी। इसी प्रकार नागा नामक जातिका भी भाग्य निपटा। इसमें केवल मात्र क्षत्रियोचित गुणोंके होनेसे सदैव ही संघर्षका जीवन वना रहा। (यह अपना जीवन किस प्रकार छोड़ जावें, यह कभी भी प्रयत्न न हुआ। हाँ, जिन लेखन कलाशील जातियोंका इनसे सम्वन्ध हुआ उनके संदर्भमें सदैव इनका संक्षेपतः वर्णन यत्र तत्र आता ही रहा) यह संघर्ष चाहे विजातियोंके साथ हो अथवा स्वजातियोंके साथ इनमें सदैव चलता रहा। इन्हें कभी भी ऐसी शान्तिका समय न मिला जव वे अपने व्यक्तित्वके व्यक्तीकरणमें संलग्न हो सकते। सदैवसे साहसिक होनेके नाते कभी तो इनका वर्णन हमें समुद्र तटवासीके रूपमें मिलता है, कभी वन और पहाड़ोंमें विचरनेवालोंके रूपमें। इनमें स्वाभिमान और स्वतंत्रताका गुण इतना अधिक रहा कि ये आज भी उसे अक्षुण्ण वनाये हुए हैं। आस पास तथा अपने ही दलोंमें लड़ती झगड़ती यह जाति सैकड़ों वर्षका समय-यापन कर गई लेकिन अपने मूल गुणोंका त्याग न किया। संकटके समय निर्जन वन और सघन पर्वत ही वीर जातियोंके आश्रय वनते हैं, यह ऐतिहासिक सत्य भला इनसे कैसे दूर हो सकता था? अतएव प्राचीन समयसे ही इनका निवास ऐसे ही प्रदेशोंमें रहा जहाँ ये अपने परम्परागत गुणोंका संरक्षण कर सकें। निरन्तर संघर्षके कारण दिनोंदिन इनकी संख्या कम होती गई और ये निर्जन वन तथा पर्वतोंकी ओर बढ़ते गये। आसामी भाषामें 'नागा' शव्दका अर्थ पहाड़ होता है जहाँपर इनकी प्रधान वस्तियाँ हैं। संभवतः इसीलिए ये लोग नागा कहलाये जाने लगे हैं। आज ये आसाम और मनीपुर आदिकी उन पर्वतीय श्रेणियोंमें घुसे हुए हैं, जहाँका वातावरण इनके स्वयंका वनाया हुआ है। शेर और चीतेकी खालका पहिनावा जंगली जानवरोंके सींगोंके आभूषण, वनैली घुँघचियोंके हीरा-जवाहिरात, रंग-विरंगे वालोंमें पिरोई हुई कोड़ियोंकी मालाएँ, शेरके वाल कन्धेपर लटकाये हुए, वनैले प्रान्तमें हाथमें भाला और खाण्डा लिये हुए, तथा उसीमें दो चार नर-मुंड लटकाये हुए, सच्चे कापालिकका वेप वनाये, स्वच्छन्दतासे विचरनेवाले जीव, संसार द्वारा नागा कहे जानेवाले यह उसी नाग जातिके अवशेप सजीव चिह्न वर्तमान हैं। ये अपने प्रदेशके स्वतंत्र प्राणी हैं। ये आज भी परम्परागत आये हुए अपने शत्रु पड़ोसी दलोंसे वैमनस्यका वदला वड़ी गम्भीरता और दृढ़ताके

साथ लेते रहते हैं। वदला लेनेकी प्रवृत्ति सैकड़ों वर्षोसे इनके रग रगमें इतना घर कर गई कि आज इनके सामाजिक रीतिरिवाज भी उसी वैमनस्यके आधारपर



नागा योद्धा जिसकी भयंकरता जगत् प्रसिद्ध है

निर्मित विश्वासके रूपमें बैठ गये। आज ये मारने काटनेको, शत्रु दलको धराशायी करनेमें, नर-मुंडोंके रखनेमें अभिमान और गौरव समझने लगे, यह इनकी सौ दो सौ वर्षोंकी प्रकृति नहीं, वरन् यह किसी अतीतसे आई हुई प्रवृत्तिका परिणाम है। इस संघर्षमय जीवनमें अपना सब कुछ खो चुकनेपर भी यह जाति अपनी स्वच्छन्द और स्वाभिमानी प्रवृत्तिको अक्षुण्ण बनाये हुए है। ये लोग आज भी किसीका स्वामित्व स्वीकार नहीं करते हैं। हज़ारों पीढ़ियोंसे अपने शत्रु दलोंसे (जो कि वास्तवमें इनकी ही जातिके हैं) पारस्परिक वैमनस्यका बदला लेते रहते हैं। आज ये उस पूर्व सभ्यतासे तथा उस पूर्व इतिहाससे नितान्त अपरिचित हो गये। इनकी जैसी परिस्थितियोंमें कोई भी जाति यही हो सकती है। फिर भी इन्होंने अपनी उस वीरताका अद्भुत संरक्षण किया है जिसके कारण इनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रसिद्ध प्राचीन आर्य जातिसे अविच्छिन्न रहा था, जिसमें किसी भी प्रकारका भेदभाव न रहा था। आज तो यह युगका प्रभाव कहिए अथवा हमारा दुर्भाग्य कहिए कि उस प्राचीन संबंधको हम भी ऐसे भूल बैठे हैं कि हम विदेशियोंके निश्चयोंको जो कि किसी उद्देश्य (अहित कर) को लेकर हुए हैं—न्याय संगत और सत्य मान बैठे हैं। इसका कारण यह भी तो है ही कि हम स्वयं अपनी प्राचीन इतिहासकी सामग्रियोंको नहीं देखते। स्वयं भी अज्ञानतामें हम दूसरेके अहितकर तथा कथित ज्ञानकी धारामें बहे जाते हैं। यह कहना कठिन है कि पुरातन कालसे आज तक इन लोगोंमें किस किस प्रकारका रक्त-मिश्रण होता गया, तथा आज तक इन लोगोंमें न जाने कितने सांस्कृतिक परिवर्तन होते रहे। पर यह स्पष्ट विदित होता है कि इनमें पुरातन रक्त आज भी पाया जाता है और इनकी मूल प्रवृत्तियोंका बीज इनमें आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है।

नागा लोगोंकी बहुत सी उपजातियाँ हैं—रेग्मा, लोटाह, अंगामी, कोन्यक, तांगखेल, माओ, एओ इत्यादि। इनमेंसे अंगामी जातिके लोग विशेष समझे जाते हैं। ये बड़े वीर और वैमनस्य चुकानेमें सर्व श्रेष्ठ समझे जाते हैं। ये लोग यद्यपि सघन जंगलोंके विचरणशील प्राणी हैं, फिर भी इनमें स्थायी निवासकी प्रवृत्ति अधिक है। ये लोग अधिकतर ऊँची पहाड़ियों पर मोटे लट्ठों द्वारा चहार-दीवारी घेर कर गाँवके गाँव बसा लेते हैं। ये ऊँचे पर बसे हुए गाँव छोटे छोटे दुर्गके समान मालूम पड़ते हैं। नागा लोग शरीरके हट्टे कट्टे और बड़े सुदृढ़ होते हैं। दाढ़ी मूँछ उनके नहीं होती। फिर भी उनको देखकर भय ही लगता है।

ये लोग अपने अपने अलग घरमें रहते हैं। घरोंके द्वार बहुत छोटे होते हैं। गाँवमें एक बहुत बड़ा ऐसा घर होता है जहाँ बड़ी बड़ी लंबी तिपाइयाँ पड़ी रहती हैं और वहीं पर अस्त्र शस्त्र तथा पशु-मुण्ड आदि टंगे रहते हैं। गाँवके सारे अविवाहित युवक यहीं सोते हैं। इन घरोंको नागा लोग 'रंगकी' अथवा 'दकछंग' कहते हैं। इसीमें इनका सबसे बड़ा बूढ़ा निवास करता है जो कि युवकोंके जीवनका कुशल निरीक्षक होता है। यही बच्चोंके आचरणको बनानेका उत्तरदायी होता है। लड़कियोंके लिए भी इसी प्रकारका एक घर होता है जहाँ अविवाहित लड़कियाँ रहती हैं। यह घर 'हिलोकी' नामसे पुकारा जाता है। यहाँ भी लड़कियोंके निरीक्षणके लिए एक वृद्धा रहती है जो उनके आचरणकी उत्तरदायी होती है। दिन भर लड़के लड़कियाँ अपने माता-पिता आदिके संग रहते—काम काज करते हैं। सन्ध्या होते ही लड़के लड़कियाँ अपने निश्चित शयनागारोंमें चले आते हैं। यद्यपि ये लोग अनुशासनमें बड़े कट्टर होते हैं, फिर भी चलने फिरने, काम करने बातचीत करने तथा स्वतंत्रताके साथ अपना जीवन-साथी ढूंढ़ लेनेमें कोई बन्धन नहीं होता है। गाँवके बड़े बूढ़ोंकी पंचायत होती है। सब लोग उन्हींके नियन्त्रणमें रहते हैं। हत्याका बदला सदैव हत्यासे ही लिया जाता है। आज सदियोंसे अपने कबीलोंमें संघर्ष करते करते हत्या आदि करना इनका साधारण कार्य हो गया है। इसे ये पवित्र कार्य समझते हैं। प्रतिशोध लेना मानो इनके जीवनका परम लक्ष्य है। आज वर्षोंसे ये ऐसा ही करते हुए सघन जंगलोंकी ऊँची पहाड़ियोंपर बसे हुए जीवनके संघर्षमें संलग्न हैं।

पहाड़ोंपर रहनेवाले स्त्री-पुरुष प्रायः नंगे ही रहते हैं लेकिन तराईके अधिकांश लोग कपड़ेका प्रयोग करते हैं। ये लोग मिर्जई तथा चुस्त बंडी पहनते हैं, जिसके ऊपर चादर ओढ़ते हैं। कमरमें लंगोटी तथा ऊँचे ऊँचे घुटनों तक रंगे हुए घाघरे पहिनते हैं। मोजोमाके लोग एक सन जैसे रेशेदार पौधेकी छालसे मोटा कपड़ा तैयार करते हैं, जिसे बहुधा ओढ़ते हैं। साधारण करघों पर ये लोग कपड़ा बुनते हैं। इस कार्यमें "तांगखेल" जातिके लोग बड़े दक्ष होते हैं। 'तांगखेल' स्वतः जुलाहेको कहते हैं। सादा रंगाई भी ये लोग करते हैं। कठोर परिश्रमकी प्रतीक इनकी स्त्रियाँ अधिक सुन्दर नहीं होती हैं। ये नाटे कद और स्थूल कमरकी होती हैं। किन्तु अपनेको आकर्षक बनानेमें किसी भी प्रकारकी कोर कसर नहीं रखती हैं। गोदना गुदानेकी प्रथा इनमें तथा इनके पड़ोसियोंमें अधिक है।

स्त्रियाँ लहँगा पहनती हैं, जिनमें वेल वूटेदार डिज़ाइनें वनी रहती हैं। नीले रंगकी चोली वक्षस्थल पर पहिनती हैं। विवाहिता स्त्रियाँ लम्वे लम्वे बाल रखती हैं। रंग विरंगे दानों तथा वीजोंकी माला गलेमें पहिनती हैं। काँचके हरे दानों और कौड़ियोंकी सहायतासे ये हार हँसली बाजूबन्द आदि वनाकर वड़े चावसे पहिनती हैं। चूँकि इन लोगोंमें सैनिक महत्व अधिक है, अतएव इनका सैनिक वस्त्राभरण वड़ा ही आकर्षक तथा ठाटवाटका होता है। सैनिक एक ताज पहिनता है, जो वेतका वना होता है। चारों तरफ शेर चीतेकी खालसे मढ़ा हुआ होता है। भैंसोंके सींग हाथ भर ऊँचे उठे हुए इसीमें जड़े होते हैं, जिनपर रंग-विरंगी चित्रकारी होती है। इन्हींमें लटकती हुई इधर उधर लकड़ीके टुकड़े जिनपर घुंघचिलें आदि जड़ी रहती हैं रंग विरंगी कौड़ियोंकी मालाएँ इसी ताजको आच्छादित किए रहती हैं। इधर उधर वालोंको ऐंठे हुए पुछल्ले लटकते रहते हैं। हाथमें भाला और खाँडा लिए रहते हैं। कानोंमें पीतलकी वालियाँ काले रंगका घांघरा, पक्षियोंके पर खोंसे हुए, टाँगोंमें वेतके वने छल्ले और वीरत्व प्रदर्शनकारी अपना व्यक्तित्व लिए नागा सैनिक रण-यात्राके लिए तैयार रहता है। उसके सरदार द्वारा शकुन पाते ही वह रण-यात्राको निकल जाता है और कापालिककी भांति नरमुण्डोंको लटकाए हुए वापिस लौटता है।

उद्यम—युद्ध और शिकार ये ही दो उद्यम इन्हें अतीतसे मिलते आए हैं। ये अपने अस्त्र-शस्त्र स्वयं वनाते हैं। अव थोड़ा-वहुत व्यापार भी करने लगे हैं। ये लोग हाथीदाँत, मोम और सनके कपड़े वनाते हैं, ये लोग अधिकतर सुअर और मुर्गियाँ पालते हैं जिन्हें वे अपने घरोंके एक कोनेमें रखते हैं। ये लोग दूधका व्यवहार नहीं करते। हाथीका मांस खानेका इनको वड़ा चाव रहता है। हाथीका मांस इनके यहाँ सार्वजनिक उत्सवों पर खाया जाता है। चावलको सड़ाकर इनके यहाँ एक प्रकारकी शराव वनाई जाती है जिसे ये लोग खूव पीते हैं। इसी शरावके सहारे अपने प्रिय मनोरंजक नृत्यका प्रदर्शन करते हैं, जो वड़ा ही सुन्दर होता है। ये लोग खेती वहुत कम करते हैं। स्त्रियाँ खेतों पर काम करतीं, पानी भरतीं, कपड़े लकड़ी आदिका तथा अन्य गृहस्थीका कार्य करती हैं। ये प्रायः जंगली जानवरोंका शिकार करते हैं। वड़े तथा चालाक जानवरोंको वे लोग वड़ी युक्तिसे फँसाते हैं। पहले एक गड्ढा खोदते हैं, उसमें तीर वर्छा आदि नीचे खड़े गाड़ देते हैं। गढ़ेको ऊपरसे पत्तियों फूंस आदिसे इस प्रकार ढँक देते हैं कि पृथ्वीकी सतह पर गढ़ा न

ज्ञात हो। जानवर चलता चलता उसी गढ़ेमें धोखेसे आ गिरता है और उसका शरीर उन भालों वर्छोमें विंध जाता है। ये लोग प्रायः इसी युक्तिका प्रयोग करते हैं।

विश्वास—ये लोग बहुतसे भूत-प्रेतों और देवी देवताओंमें विश्वास करते हैं। 'सेमिओ' नामका देवता इनके यहाँ धनका अधिकारी समझा जाता है। 'कनंगआवा' दुष्ट वृत्तिका देवता माना जाता है। ये लोग मूर्ति पूजक होते हैं। अपने देवताओंको



नागाओंका मनोरंजक नृत्य (रात्रिमें)

पशु-पक्षियों और नरमुण्डोंकी बलि देते हैं। नरमुण्डोंका एकत्रित करना इनके यहाँ पवित्र कार्य समझा जाता है। मृतकको यह लोग गाड़ते हैं और समाधि पर कुछ खाने पीनेकी वस्तुएँ छोड़ देते हैं। अन्त्येष्टि क्रियाके पश्चात् इनके यहाँ भोज होता है, जिसमें सारा समाज सम्मिलित होता है। शराबका प्रचलन इनके यहाँ भी अधिक है। ये लोग 'रण-नृत्य' में बड़े ही प्रवीण होते हैं। शराबकी मस्तीमें अपने अस्त्र-शस्त्रको साधन बना कर ये अपने हावभाव आदिका प्रदर्शन बड़े ही मनोरंजक विधिसे करते हैं। अपने इन कृत्योंमें ये लोग इतने तन्मय हो जाते हैं कि शरीरकी भी सुध बुध भूल जाते हैं।

आज तक ये लोग स्वतंत्र प्रकृतिके बने हुए हैं। "इनका कोई शासक है" ऐसा इन्हें कभी नहीं प्रतीत होता है। इनके वर्छे भाले ही इनके राजा हैं। इन्हींके सहारे ये स्वच्छंद होकर विचरण किया करते हैं।

आसामके कूकी लोग

आसामकी वन्य जातियोंमें कूकी लोगोंका प्रधान स्थान है। इनको अधिकतर लुशोई कूकी भी कहा जाता है क्योंकि इनका प्रदेश लुशोई पर्वत मालासे आच्छादित है। इनका प्रदेश सिलहटकी दक्षिणी सीमा टिपरा तथा उत्तरी कचार पहाड़ियोंका प्रदेश है। इनकी कुछ वस्तियाँ चटगाँवके पहाड़ी मैदानोंमें भी दिखाई पड़ती हैं। पहाड़ी प्रांतकी बहुलता होने पर भी इन्हें विधाताने नदियोंकी भी दैन दी है। कर्णाफूला, तुईलान, पुई, त्याओ, और कोलदीने नामकी नदियाँ इनके जीवनमें वहुमूल्य सिद्ध हुई हैं। यद्यपि कर्नल शेक्सपियरके अनुसार ये पाँच वर्गोंमें विभक्त हैं। किन्तु ये लोग आपसमें इतने मिले जुले हैं कि इनकी विभिन्नता स्पष्ट दृष्टि-गोचर नहीं होती। इस जातिके प्रधान व्यक्ति अपने मूल पुरुषका नाम 'पैंगुर' वतलाते हैं। संभव है यह कोई प्रसिद्ध व्यक्ति रहे हों जिनके नाम पर इस जातिकी वृद्धि हुई हो और उसीके कारण इन्होंने उन्हें यह अमरत्व-पद प्रदान किया हो। ये लोग कदमें नाटे हृष्ट-पुष्ट शरीर, चिपटी नाक, मोटे ओंठ, वलवान तथा गोरे रंगके होते हैं। दाढ़ी साफ तथा मूँछ भी वहुत कम होती है। ये अपनी यत्र तत्र मूँछके उगे हुए हुए वालोंको उखाड़ भी डालते हैं। सिरके वालोंको स्त्री पुरुष चोटी वनाकर पीछे कर लेते हैं। ये लोग अपनेको हिन्दू कहते हैं। इन लोगोंकी वस्त्र-व्यवस्था वड़ी सादी है। पुरुष सात फीट लम्वा तथा ५ फीट चौड़ा कपड़ा पहिनते हैं। इनका सर्दार या मुखिया पगड़ी भी पहिनता है। स्त्रियाँ कमरसे कुछ ऊपर तक कपड़ा पहिनती हैं। घने तथा भीतरी प्रदेशोंमें नंगे रहनेका भी प्रचलन है। स्त्री-पुरुषका वाह्यरूप वहुधा एकसा रहनेके कारण दूरसे कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। गोदना गुदानेका प्रचलन इनमें कम है।

ये लोग सदैवसे रण प्रिय होनेके कारण धनुष-वाण, भाला, वर्छा, ढाल, वाँसके शूल, कुल्हाड़ियाँ, गदा, दाँव आदि रखनेके आदी हो गये हैं। एक विशेष प्रकारके शंखोंकी माला वना कर पहिनते हैं। अपने आपको भयंकर वना लेनेकी

प्रवृत्ति इनमें बड़ी प्रबल पाई जाती है, ताकि ये भयंकरसे भयंकर शत्रु तथा जंगली जानवरोंको भी भयभीत करनेमें आसानीसे समर्थ हो सकें। धूम्रपानका सेवन करना इन्हें अत्यधिक प्रिय है। हिंसाकी भावना इनमें बहुत तीव्र पाई जाती है। शत्रुसे वदला लेना इनका परम कर्त्तव्य है। यहाँ तक कि यदि कोई जंगली जानवर इनके किसी व्यक्तिको कोई आघात पहुँचावे तो उस जानवरको मार कर ही दम लेते हैं। तभी इन्हें शान्ति होती है।

ये लोग अपने निवासस्थान यद्यपि बदलते रहते हैं फिर भी सामाजिक भावनाका इनके अन्दर स्थान है। इनके झोंपड़े बाँस और बेंतके बने होते हैं। पृथ्वीसे कुछ ऊँचाईपर बाँसके लट्ठों पर ये लोग झोपड़े बनाते हैं। ये झोपड़ियाँ पहाड़ोंकी शिखरोंपर भी होती हैं। इन्हीं झोंपड़ियोंके समूहको गाँव कहा जाता है। जिसे ये अपनी बोलीमें 'खूवाँ' के नामसे पुकारते हैं। इन झोपड़ियोंके रक्षणार्थ सदैव पहरा रहता है जो कि इनकी उत्पाती प्रवृत्ति तथा पासवर्ती लोगोंके आक्रमणसे बचनेके लिए उचित सावधानी सूचित करता है। ज्यों ज्यों इनकी आबादी बढ़ती जाती है त्यों त्यों इनके गाँव अधिकतर बढ़ते जाते हैं। पुत्रके विवाहके उपरान्त उसे अन्यत्र बसना पड़ता है, ऐसा इनके समाजमें चलन है। अतएव उत्पत्तिके साथ साथ नई बस्तियाँ भी बढ़ती जाती हैं। वे नई बस्तियाँ अपनी मूल बस्तियोंकी विपत्तिमें रक्षा करती हैं। इस प्रकार इनमें परिवारगत संस्कारकी रक्षा होती है। इन्हीं बस्तियोंमें ये लोग कछ समय तक निवास करते हैं। पुरुष अधिकतर शिकार तथा युद्धमें रत रहते हैं, इसी कारण स्त्रियाँ खेती आदि घरेलू कार्योंका संचालन करती हैं। बड़ी परिश्रमी होती हैं। इसी कारण उनका अपने समाजमें बड़ा आदर है। बांस और वेंतके नलियाँ, चोंगा, डलियाँ, खांचे आदि आवश्यकताकी वस्तुएँ ये लोग बना लेती हैं। बाँसकी जड़ोंका ये लोग भोजन भी बनाती हैं। अधिकतर खेतोंमें चावल, तम्बाकू, शाक-भाजीकी खूद पैदावार होती है। जंगल शिकारके लिए बहुत घनी हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग मुर्गे मुर्गियाँ तथा सुअर पालते हैं। ये कपास आदिका खूब व्यापार करते हैं। जंगलोंमें शहद अधिकतासे होता है। इन्हें खाने पीनेका अभाव कम ही रहता है। किन्तु ये लोग फिर भी अस्वस्थ रहा करते हैं। इसका कारण एक तो यह है कि एक तो इनके जंगल इतने घने हैं कि उनमेंसे निकल जाना तथा रास्ता पा जाना किसी बिरलेका ही काम है। बरसातमें तो इन जंगलोंमें इतने कीड़े मकोड़े हो जाते हैं कि इसके कारण तथा

सदैव नमी रहनेके कारण ये लोग बड़े बड़े संघातक रोगोंके शिकार बन जाते हैं दूसरा कारण यह है कि ये लोग कभी स्नान नहीं करते और न कपड़े ही धोते हैं। तथा इन जंगलोंमें इन्हें विसन, जंगली भैंसों तथा जंगली हाथियोंका आक्रमण सदैव सहना पड़ता है। अतएव इनका जीवन कभी भी प्राकृतिक, दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापोंसे खाली नहीं रहता है। इसीके निवारणार्थ इन्हें नित्य अपने देवी देवताओंको प्रसन्न करना पड़ता है। ये लोग अपने सबसे बड़े देवताको 'पुतियाँग' नामसे जानते हैं। जिसे समयपर सुअर और मुर्गियोंकी वलि चढ़ाते हैं। ये लोग अपने पुजारीको 'थेम्पू' के नामसे पुकारते हैं। यही पूजाकी सारी विधि



घने जंगलमें जंगली भैंसेका शिकार

करता है। एक अनिष्ट करनेवाला भी देवता होता है, जिसे ये लोग सदैव वलिदान द्वारा प्रसन्न किया करते हैं। इनके यहाँ भूत-प्रेत तथा मृतात्माओंकी भी पूजा होती है। जिसे ये नर-मुण्डों तककी वलि देते हैं।

इन लोगोंका सर्दार उनका राजा होता है। जिसका चिह्न पतली छालकी मेखला होती है, जिसे वह पहिने रहता है। राजा अपने साथ कुछ ऐसे प्रसिद्ध तथा वीर व्यक्तियोंको रखता है, जिनका सारे समाजमें आदर और सत्कार

होता है। ये ही लोग उसका राज काज सम्हालनेमें सहायता करते हैं। इनके अतिरिक्त 'थेम्पू' नाम का पुजारी इनमें अधिक सम्मानित समझा जाता है। राजाको प्रजाकी ओरसे सुअर, मुर्गा शिकार आदि, हाथी दाँत, तथा चावल कर के रूपमें मिला करते हैं। तथा एक वर्षमें राजा चार दिन प्रत्येक व्यक्तिसे बेगार ले सकता है। परिवारोंमें उठनेवाले झगड़े राजा द्वारा तै होता है। राजाका न्याय अन्तिम माना जाता है।

विवाह—इनके यहाँ विवाहमें वैयक्तिक चुनावका अधिक मूल्य है। जब कोई नवयुवक किसी बालिकासे प्रेम करने लगता है। (ऐसा समवयस्क दशामें ही होता है) तो वह बालिकाके माता-पितासे विचार प्रकट करता है। बालिकाके माता-पिता उसे स्वीकार कर लेते हैं तथा इस स्वीकृतिके स्वरूप नवयुवक एक ढाल उस मकानके दरवाजेपर रख देता है जिससे फिर किसी अन्य नवयुवकको वहाँ प्रवृष्टिका अधिकार नहीं रहता है। इसके पश्चात् युवक और युवती साथ साथ रहने लगते हैं। युवक तीन माहसे लेकर दो सालसे भी अधिक तक रह सकता है। इसी बीच दोनों एक दूसरेके जीवनसे परिचित होते हैं तथा विवाहकी दृढ़ता तै होती है। जब ये दोनों समझ लेते हैं कि उनका जीवन यापन भली प्रकार हो जायगा तो वैवाहिक संस्कार होता है। यदि वे बिना संस्कारके ही रहना चाहें तो जीवन पर्यंत बालिकाके माता-पिताको कहकर वे भली प्रकार अपना वैवाहिक जीवन निर्वाह करते रहते हैं। किन्तु ऐसा वे ही करते हैं जो कि विवाहके मूल्यसे बचना चाहते हैं तथा वे लोग जो विवाह-संस्कार करना चाहते हैं, उन्हें एक ऐसा मूल्य कन्याका चुकाना पड़ता है जिसे कन्याके माता-पिता निर्धारित करते हैं। कभी कभी ये मूल्य काफी होते हैं, जिसे यदि वे नहीं चुका पाते तो जीवन पर्यन्त उसी परिवारकी सेवामें रत रहते हैं। कभी कभी तो इस प्रकारका ऋण परिवारगत हो जाता है। यदि इस मूल्यको चुकानेकी कुप्रथा इनमें न होती तो विवाहका आदर्श रूप प्रचलित हो जाता। ये कन्या क्रयकी प्रथा इनको बहुत तंग करती रहती है। किन्तु संघर्ष तथा अधिक मूल्यका निर्धारण बहुत कम हुआ करता है। अधिकांशमें ये लोग मूल्य चुका कर अपना जीवन निष्कंटक चलाते हैं। यदि वे वरको आसानीसे मुक्त कर देते हैं तो कन्या-पक्षका एहसान वरके ऊपर सदैवके लिए स्थिर हो जाता है। साधारणतया यही देखा जाता है। कूकी लोग शपथके बड़े पक्के होते हैं अपने वचनसे कभी भी नहीं टलते हैं। यदि प्रयोगकालमें ही कन्याको गर्भ रह जाता है तो वरको

वधूके साथ विवाह अनिवार्यतः करना पड़ता है। अथवा वर किसी अन्यको रिश्वत आदि देकर अपना उत्तरदायित्व दूसरेके ऊपर रख दे। किन्तु इसमें कन्याकी भी सहमति आवश्यक होती है। इन लोगोंमें एक पत्नी प्रथा है। अविवाहिता लड़कीको भगानेके अपराधमें मृत्यु दण्ड ही दिया जाता है। इस प्रकार विवाहकी व्यवस्था इनके यहाँ एक बड़ी पवित्र वस्तु मानी जाती है।

इनके यहाँ जब कोई सरदार या राजा या ऐसा तथा ऐसा ही कोई प्रसिद्ध व्यक्ति मरता है तो दो तीन माह तक उसके शवको एक सन्दूकमें वन्द करके एक कमरेमें रक्खा जाताहै। पश्चात् बाहरसे एक बाँसकी नलीसे बाहरकी आगसे गर्मी दे दे कर उसे महीनों तक सुखाया जाता है। जब सूख जाता है, तब उसे निकालकर नर-कंकालकी हड्डियोंको इकट्ठा करके कमरेके एक कोनेमें रख छोड़ते हैं और उसे संचित रखनेका प्रयत्न करते हैं। साधारण व्यक्तिके मरनेपर उसे मकानके सामने ही जलाते है तथा उसीके साथ साथ कुछ उसीकी आवश्यक वस्तुएँ रख देते है। पश्चात् उसके घर जाकर 'तेलाई' और 'संग्रोन' नामके देवता को जानवरोंकी वलि देकर शराव आदि पीते हैं तथा शोक मनाते हैं। इन लोगोंका विश्वास है कि मरने पर वीर पुरुष स्वर्ग जाते हैं तथा निम्न पुरुष नर्कमें जाते हैं। स्वर्गको वे अपनी बोलीमें "पियालराल" तथा नर्कको "मिथीखुवा" कहते हैं। सबसे उत्तम पुरुषकी परिभाषा उनकी दृष्टिमें वीर, बहादुर, खूंखार तथा प्रतिशोध लेनेमें कुशल होना चाहिए। इस प्रकार ये जातियाँ सहस्रोंकी संख्यामें अपना अद्भुत जीवन लिए हुए आसामकी घनी पहाड़ियोंमें तथा सघन जंगलोंमें विचरती हुई अपने अस्तित्वको स्थिर रखनेमें दत्तचित्त तथा रत हुई घूमती फिरती अपनी एक अलग सत्ता—जिससे आजका भारत तथा संसार वहुत कुछ अपरिचित है—लिए फिरती हैं। इनका कठिन जीवन आज भी वाह्य संसारके लिए एक आश्चर्यकी वस्तु बना हुआ है।

आसामकी गारो जाति

यह जाति आज सदियोंसे अपने पड़ोसियोंके बीच रहती हुई सबसे भिन्न सामाजिक स्थिति रखती चली आई है। वंगालके ठीक उत्तर पूर्वमें तथा आसामके दक्षिणमें स्थित गारो पहाड़ियोंके बीचमें रहनेके कारण ही संभवतः इनका नाम गारो पड़ गया। वास्तवमें यही प्रदेश इनकी आवास-भूमि है। यह प्रदेश प्रकृति-

का एक सुन्दर प्रान्त है। ऊँची-ऊँची पहाड़ियोंके बीच सघन घने बाँसके जंगल तथा हरी भरी घाटियाँ बड़ी सुन्दर ज्ञात होती हैं। इन्हींके बीच छोटे कद, छोटी आँखें, चौड़ा मुंह, तथा मोटे ओठ और गंठित शरीरधारी स्त्री पुरुष निःशंक विचरण किया करते हैं। प्रकृतिने इन्हें प्रारम्भ ही से कठिन परिश्रम करने वाला तथा साहसी बना दिया है। क्या पुरुष और क्या स्त्री सभी साहस और बलकी मूर्तियाँ हैं। अधिक सौन्दर्ययुक्त न होने पर भी ये लोग उत्साही तथा सच्चे होते हैं। इनकी जितनी भी टुकड़ियाँ हैं, उतनी ही बोलियाँ हैं और वे बोलियाँ एक दूसरेसे इतनी भिन्न हैं कि आपसमें ही एक दूसरेका समझना दुष्कर हो जाता है। फिर भी उनकी बोलियाँ तिब्बतीके अधिक समीप हैं।



कानोंमें बड़ी बड़ी बालियाँ पहिननेवाले गारो लोग
पास ही ऊँचेपर इनकी झोंपड़ी बनी है और पास ही किसी मृत व्यक्तिका स्मारक है जिसे ये लोग 'कीमा' कहते हैं।

जैसा इनका जीवन सादा है उसी प्रकार ये वस्त्र भी कम पहिनते हैं। एक छोटी लंगोटी रस्सीसे कमरमें बांध लेना ही ये पर्याप्त समझते हैं। किन्तु विशेष उत्सवों तथा बाहर बाजार आदि दूर जाते समय ये लोग कुछ अधिक कपड़ेका प्रयोग करते हैं। वे कभी कभी स्वनिर्मित मुकुट धारण करते हैं जिनमें मुर्गोंके पंख लगे रहते

हैं। इनकी स्त्रियाँ अपने कानोंमें वहुत बड़ी बड़ी वालियाँ पहनती हैं, कभी कभी तो इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि कान फटने तककी नौबत आ जाती है। ये लोग लोहे, काँसे तथा पीतलके सामान बनानेमें बड़े कुशल होते हैं। नदीकी घाटियोंमें ये लोग खेती करते हैं किंतु 'झूम' की प्रथा ही इनके यहाँ प्रचलित है। इनके यहाँ चावल मक्का और कपास ही मुख्य उपज है। किन्तु प्रधानतया ये शिकार पर ही अवलंबित रहते हैं। समय पड़ने पर विल्ली, कुत्ता, मेढक, साँप, कीड़े, मकोड़े, गाय, वकरी, सुअर, मुर्गी, बत्तख इनसे कुछ भी नहीं बचते। शराव इन्हें वहुत ही प्रिय है। इसका प्रयोग वचपनसे ही ये लोग करने लगते हैं।

इनके मकान भी वड़े विचित्र होते हैं। ये अधिकतर पहाड़ियोंकी ढालपर मकान वनाते हैं अथवा वृक्षके ऊपर वनाते हैं। इन घरोंको ये लोग 'चाँग' कहते हैं। बाँस, फूँस और पतवारकी सहायतासे झोपड़ीनुमा मकान ये लोग वनाते हैं। इनमें कई कमरे होते हैं। इनके प्रदेशमें बाँसकी वहुलता होनेके कारण इनकी वहुत सी आवश्यकताकी वस्तुएँ बाँस की ही बनी होती हैं। हर एक गाँवमें कुछ मकान ऐसे होते हैं जिनमें केवल अविवाहित पुरुष रहते हैं। ऐसे मकानोंकी रचना इन नवयुवकोंको स्वयं करनी पड़ती है। इन युवकोंके गृहोंको 'नोकपान्टे' कहते हैं। इसी प्रकार उनके वे मकान जो खेतोंके किनारे वृक्षों पर बने रहते हैं, वोरांग कहलाते हैं। यहींसे ये लोग अपनी खेतीकी रक्षा करते हैं। ये मकान इनके बड़े सुरक्षित होते हैं। जंगली जानवरों तथा अन्य शत्रुओंका इन्हें सदैव भय बना रहता है। इसलिए अपनी सुरक्षाके लिए ये लोग सदैव अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित रहते हैं।

विवाह प्रथा—संसारकी कतिपय ऐसी जातियोंमेंसे यह भी एक है जहाँ स्त्रीके वंशपर ही वंश-परम्परा चलती है। समाजका आधार स्त्री-मूलक माना जाता है। नाम भी उसी प्रकार चलते हैं। सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी स्त्री ही होती है अथवा उससे उत्पन्न लड़की ही होती है। इनके यहाँ पत्नीका घर बसता है, पतिका नहीं। बच्चोंका नाम मातृमूलक होता है, पिताके नामपर नहीं। पुरुष जो कुछ कमाता है, जो कुछ पाता है, अथवा उसे कहींसे जो कुछ मिलता है उन सब चल अथवा अचल सम्पत्तिपर स्त्रीका अधिकार होता है। विना पत्नीकी अनुमतिसे पति कोई भी वस्तु स्वच्छन्दतासे न तो किसीको दे सकता है, न बेच सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके बीच नित्य संघर्ष रहा करता है। जब पति पत्नी-

का सम्वन्ध स्थिर हो जाता है, तव एक दूसरेको जीवन-पर्यन्त अपनी पवित्रतापर विश्वास रहता है, तथा एक सुव्यवस्थित सम्वन्ध रहता है। पति पत्नीका चुनाव पति पत्नीकी स्वीकृतिपर ही होता है। प्रायः कन्या ही किसी वरकी खोज करती है तथा वरके पीछे वह तबतक पड़ी रहती है, जबतक वह राज़ी न हो जाय। जब इस प्रकार पारस्परिक स्वीकृति हो जाती है तो विवाहकी दो प्रचलित पद्धतियोंके अनुसार विवाह-क्रिया की जाती है। दो मुर्ग़ोंके बच्चोंको भूनकर परिवारके बाहरके लोग वलि चढ़ाकर खा जाते हैं, फिर दोनों बच्चोंकी अँतड़ियोंको मिलाकर देखा जाता है। यदि वे समान तथा बनावटमें बराबर तथा एकसी पाई गई तो विवाहोपरान्त दम्पतिका जीवन सुखमय समझा जाता है। इसके पश्चात् पुरोहित वर वधूकी तीन बार पीठ ठोक देता है और विवाहका कृत्य पूरा समझा जाता है। दूसरी पद्धति यह है कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्रीके पास सोवे अथवा कोई स्त्री पुरुषके पास सोनेकी इच्छासे सोवे और एक दूसरेको कोई आपत्ति न होवे तो विवाह पक्का समझा जाता है। विवाहोत्सवमें ख़ूब ख़ुशियाँ मनाई जाती हैं। तथा सहभोज होता है तथा शराब और नाच-गानेके कार्य बहुलतासे होते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ बड़ी परिश्रमी तथा श्रद्धालु होती हैं। वे कठिनसे कठिन कार्य करती हुई अपने पुरुषका जीवन सुखमय बनानेके प्रयासमें रहती हैं।

मृत्यु संस्कार—इनके यहाँ जब किसीकी मृत्यु हो जाती है तो उसकी हैसियतके अनुसार अन्त्येष्ठि क्रिया की जाती है। मृत्युके पश्चात् चार दिनों तक लाश पड़ी रहती है। पश्चात् रातमें उसे ले जाकर जलाते हैं। अधिकसे अधिक नरवलि अथवा वैलकी वलि तथा कमसे कम कुत्ताकी वलि अवश्य दिया करते हैं। जल जानेपर मृत व्यक्तिकी अस्थियोंको लेकर एकगढ़ेमें डालकर वन्द कर दिया जाता है। उस स्थानपर बाँस तथा लट्ठोंका एक वाड़ा वना दिया जाता है। वहाँपर मृत व्यक्तिके रहन-सहनके सभी सामान लट्ठोंमें टाँग दिये जाते हैं अवथा रख दिये जाते हैं। इस स्थानको ख़ूब सजा दिया जाता है और सब सामान इधर उधर बाँसके सहारे लटका दिये जाते हैं।

इनका प्रदेश अधिक नम होनेके कारण तथा घने जंगलोंकी अधिकताके कारण सैकड़ों बीमारियोंका घरहोता है। अतः इनमें मृत्युएँ बहुत होती हैं। रोगोंकी अधिकता है। अतएव कभी कभी गांवके गांव मृत स्थानोंके स्मारकोंमें

वदल जाते हैं। यहाँ काला जार अधिक होता है। अतएव यहाँ स्मारकों (किमा) का दर्शन यत्र तत्र अधिक देखनेको मिलता है।

विश्वास—ये लोग सूर्य और चन्द्रमाकी पूजा करते हैं। इनके यहाँ मन्दिरोंका अभाव होनेपर भी ये लोग एक काँसेकी थाली रखते हैं। जिसपर कुछ आकृतियाँ खोदकर इसे ये लोग मकानमें लटकाकर रखते हैं। उसे ये लोग 'कोराँदेव' मानकर पूजते हैं। बैल, वकरे, सुअर, मुर्ग़े, कुत्ते आदिकी वलि देकर इन्हें प्रसन्न करते हैं। ये लोग मृत-पिशाचोंकी भी पूजा करते हैं तथा इस प्रकारके कृत्योंसे अपने भयको दूर करनेका विधान रखते हुए पाये जाते हैं। यही इनकी धार्मिक क्रिया है।

खासी जाति

खासी जातिके लोग जयंतियाके पहाड़ी प्रदेशमें निवास करते हैं। इनका क़द छोटा, माथा और आँखें छोटी छोटी, चौड़ी छाती, चपटी नाक और संगठित शरीर होता है। इनमें मातृमूलक प्रथा है अर्थात् विवाहके समय लड़का लड़कीके यहाँ आकर वसता है और स्त्री पलिवारपर ही वंश चलता है।

इनका मुख्य उद्यम पशुपालन, आलू, चावल, ज्वार, मक्काकी खेती करना और जंगलोंमें शहद आदि एकट्ठा करना है। लोग पहिले नरवलि अधिक दिया करते थे किन्तु अव यह प्रथा दिनोंदिन लुप्त होती जाती है। इनका मुखिया 'सेम' कहलाता है। इनके परिवार वड़े संगठित रहते हैं। लोग प्रसन्नवदन तथा गानेके अधिक शौक़ीन होते हैं। पान खानेका इन्हें विशेष चाव है। शरावका प्रचलन इनमें वहुत है। इस जातिमें ईसाइयतका प्रचार अधिक हुआ है। ये लोग अपने मृतकोंकी अस्थियोंपर विशाल पत्थरोंके स्मारक वनाते हैं।

खासी लोगोंका ताण्डव नृत्य अधिक प्रसिद्ध है। इसका नाम इनकी वोलीमें 'कशद्-कीनयेइ' अर्थात् प्रकृतिका नृत्य है। खासी लोगोंके विभिन्न नृत्योंका संचालन उनका मुखिया 'सेम' करता है। नृत्यमें नाचनेवालोंके पदोंकी द्रुततर गतिको देखकर आश्चर्य होता है। कुछ नृत्योंमें कुमारी लड़कियाँ ही भाग लेती हैं और कुछमें पुरुष। कुछ नृत्य ऐसे भी होते हैं जिनमें पुरुष स्त्री दोनों भाग लेते हैं। इनका 'नोंगक्रेम' नृत्य अधिक प्रसिद्ध है।

८—बिहार, बंगाल और उड़ीसाके बनवासी

[भारतभूमिका यह भाग ऐसा है जहाँ बनवासी सभ्यतावाली जातियाँ अत्यधिक संख्यामें रहती हैं। यह भूमि तीन प्रान्तोंमें बँटी हुई है। इन तीनों प्रान्तोंकी भूमिमें संथाल, मुण्डा, ओराँव, हो, खरिया, बिरहोर, कोरवा, खोंड, शवर, प्रजा, जुवांग आदि जातियाँ निवास करती हैं । ये विभिन्न जातियाँ विकास और सम्मिश्रणकी विभिन्न अवस्थाओंमें हैं।]

याद रखिए कि यदि आपने आदिम जातिवालोंको छोड़कर ऊपर जानेका प्रयत्न किया तो ये आपके पैर खींच लेंगे और आपको नीचे आना ही होगा। इसलिए आपको उन्हें अपने साथ ले जानेका प्रयत्न करना चाहिए, ताकि दौड़में सब साथ साथ चलें। इसमें इनका तो विकास होगा ही, साथ साथ आपका भी कल्याण होगा।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

अधिकतर ऐतिहासिकोंका मत है कि आर्योंके भारतमें आनेके पूर्व यहाँकी भूमि दो मुख्य जातियोंसे बसी हुई थी—कोल और द्रविड़। द्रविड़के विषयमें भी अधिकांश यही समझा जाता है कि बाहरसे आए। इसी लिए दुनियाके पूर्वका काल कोलोरियन काल कहलाता है। ये जाति यहाँकी प्राचीन जाति थी ऐसा विश्वास होता है। यद्यपि आर्योंका निवास-स्थान भारतवर्ष ही माना जाय तब भी यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि भारतके उत्तर पूर्वी प्रान्तोंमें कोल जाति निवास करती थी और उत्तर-पश्चिममें द्रविड़ोंका निवास था। इन दोनोंको आर्योंने दास या दस्यु कहकर पुकारा है और इनपर क्रमानुसार विजय पाई है। द्रविड़ लोग जब पराजित होकर दक्षिणकी ओर गये तो इन्हें विन्ध्य प्रान्तके निवास कोल लोगोंसे ज़बर्दस्त सामना करना पड़ा था और पराजित कर आगे बढ़ना पड़ा। इसके पश्चात् तो आर्योंकी पूर्ण विजय भारतीय भूमिमें हुई जिसके कारण ये जातियां सदैवके लिए जंगलों और वनोंकी वासिनी हो गईं। जब जब भारतीय आर्योंने इन जंगलोंमें प्रवेश किया, चाहे वह रामका काल हो अथवा महाभारतका

काल इन लोगोंको घने जंगलोंमें विचरते पाया। इस प्रकारके उदाहरण प्राचीन धर्म ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं। वरन इतना भी कहना चाहिए कि जब जब आर्य वीरोंको इन सघन वनोंमें वनवासी जीवन व्यतीत करना पड़ा, तब तब इन कोल आदि वनवासी जातियोंने उन आर्य वीरोंके प्रति जो भाव और सहायता आदिके व्यवहार किये, उनके लिए आर्य जाति सदैव ऋणी रहेगी। यही जातियाँ राम और पाण्डवोंके लम्बे वनवासी जीवनमें इनके सच्चे साथी थे, जब कि सारे पारिवारिक संबंध इनके टूट चुके थे। अतएव इन वनवासी जातियोंका उस रूपमें आर्य जातिपर कोई कम ऋण नहीं है क्योंकि इन्हीं जंगली कही जानेवाली जातियोंने आर्य वीरोंको वीरत्व-पद तक पहुँचानेका अवसर दिया जिनके यश और महानतापर सारी आर्य सभ्यता टिकी हुई है। यही भील, कोल, किरात आदिने रामको रामत्व-पद और पाण्डवों आदिको विजयत्व-पद प्रदान करनेका सुअवसर बड़े प्रयत्नसे दिया। आर्य-संस्कृतिकी प्रत्येक विजय-चिह्नमें इनके बलिदान और इतने महान् कार्योंकी कथाएँ अन्तर्बीजके रूपमें निहित हैं। आज भले ही वे अपने अतीत गौरवको प्रकृतिकी अमानवीय कन्दराओंमें खो बैठे हों—आज भले ही वे आर्य कहे जानेवालोंकी परम्परासे दूर रह गये हों—साज भले ही उनके जीवन बाह्य अस्पर्शताके कारण अनार्य दीखते हों, किन्तु वे भी भारतीय संस्कृति, समाजके निर्माणके लिए एक प्रधान अंग किसी समय रह चुके हैं। राम और पाण्डवोंकी तपस्याके जीवनके साथी क्या वे आज भुलाए जाने चाहिए? उन्हें भी उस तपस्याका मूल्य कभी देना पड़ा था। सती सीताके जीवनको १०, ११ वर्ष तक उन्हीं कोल-किरातकी असभ्य स्त्रियोंने सरस और सुखद बनाया होगा—जिसे सीताने कभी भी महलोंके सुखसे कम न महसूस किया था। अतएव उसी जातिकी सेवाएँ आज यदि हम भूल जावें तो यह हमारी अपनी दुर्बलता होगी। राम और युधिष्ठिरका समाज तो आगे निकल गया और ये लोग जहाँके तहाँ रह गये—बढ़ते बढ़ते घने पर्वत कन्दराओंमें प्रकृतिके सहारे अपना आज तकका जीवन खींच लाये हैं। बाहरी जगतसे ये जातियाँ इतनी दूर रहीं कि इनके विकास तथा प्रसारका क्रम भी आज खोजे नहीं मिलता है। अतः आज ऐतिहासिकों तथा मानव-शास्त्रियोंके लिए इनका समूह एक कल्पनाका विषय बना हुआ है। इसी प्राचीनतम वीर जातिके कुछ अवशिष्ट चिह्न आज भी विन्ध्य पर्वतसे लेकर छोटा नागपुर, हजारी बाग़, रेवा, मानभूमि, बंगाल, आसाम तथा दक्षिणमें महानदीके तट तक पाये

जाते हैं। बीच बीचमें न मालूम कितनी जातियोंका इनमें सम्मिश्रण हुआ और कहाँ कहाँ तक इन्होंने प्रसार किया निश्चित् रूपसे नहीं कहा जा सकता, किन्तु विशेष गुणोंकी समीक्षासे निम्न जातियाँ इसी वर्गकी ज्ञात होती हैं। संथाल, हो, मुण्डा, ओराँव, खरिया, ज्वाँग भील किरात आदि ये सब कोलोंकी उप-शाखाएँ हैं। इनमें कुछ जातियाँ आज भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

संथाल

संथाल लोग जीवनकी क्रूर विभीषिकाओंसे खिलवाड़ करते हुए जीना जानते हैं। उनकी सादगी और सफ़ाई सराहनीय ही नहीं, अनुकरणीय है। जैसे उजले हृदय इन काले पुतलोंके अन्दर छिपे हैं वैसे सभ्य संसारमें भी दुर्लभ हैं।

श्रीदिवाकर साहू—'समीर'

यह जाति आज एक विशेष स्थानपर अपने बड़े समुदायमें रहती है, अतः इस भूमि का ही नाम इस जाति विशेषके नामपर पड़ गया है, जो 'संथाल परगना' कहलाता है। इतना निश्चित् है कि ये लोग कहीं उत्तरी भारतसे ही संस्थान करके आये और यहाँ आकर बस गये। कोल जातिकी यह एक विशिष्ट उपशाखा है। इनकी बोली भी मुण्डा भाषा परिवारकी है। ये लोग विन्ध्यके किसी बनैले प्रान्तसे आये अतः इनके स्वभाव ज्योंके त्यों वनवासीकी ही तरह हैं। अपने धनुष-बाणसे सुसज्जित एक कठोर शिकारीका भेष लिये एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रमण करते हुए—अपनी बस्तियाँ धीरे धीरे समतल स्थानोंमें बसाते जाते हैं। संथाल परगना—इन्हीं प्रवृतियोंका एक उदाहरण है। ये लोग नाटे काले, दृढ़ शरीरवाले और बड़े साहसी होते हैं। शिकार करनेमें कुशल तो होते ही हैं। इसके अतिरिक्त खेती बाड़ी भी करते हैं। परिश्रमी तथा उद्योगी होते हैं। इसीलिए नौकरी आदिको कम पसन्द करते हैं। खेती करनेवाले पशु पालन भी करते हैं। बाँस और पेड़की लकड़ियोंके ठाठके सहारे मिट्टी जोतकर यह बड़ा सुन्दर झोपड़ी नुमा घर बनाते हैं। ये घर बड़े ही साफ़ रखते हैं। ऐसी बस्तियाँ चूंकि जंगलोंमें होती अतः ये घर बड़े बनाते हैं, जिनमें पशु भी रह सकें। अपने घरोंको ये लोग ख़ूब सजाकर रखते हैं। इनकी बस्तियाँ भी बड़ी साफ़ होती हैं—बस्तीमें बड़े बड़े चबूतरे भी होते हैं जहाँ इनकी पंचायत तथा अन्य

सामाजिक उत्सव होते हैं। इनके समाजमें एक वड़ा बूढ़ा होता है जो समाजकी सारी व्यवस्थाका उत्तरदायी होता है। यह 'माँझी' कहलाता है। यह हर एक प्रकारकी व्यवस्थाका प्रवन्धक होता है, तथा झगड़ों आदिकी भी पंचायत किया करता है।

ये लोग नाच-गानेके अधिक प्रिय होते हैं। स्त्रियाँ पुरुषोंसे अधिक शृंगार करती हैं; ये परों और बालोंके हार वनाकर पहिनती हैं। बालोंको वड़ी सुन्दरता-



संथाल
सजे हुए नृत्यके लिए तैयार
इनका नृत्य और संगीत वड़ा मनमोहक होता है।

से वाँधती हैं। पीतल और काँसेके गहने धारण करती हैं। प्रायः सन्ध्याको सभी स्त्री-पुरुष नृत्य-शालामें नाचते गाते हैं। वाँसकी वाँसुरी वजानेमें ये लोग

बड़े ही कुशल होते हैं। मधुर बाँसुरीकी ध्वनिसे और सुन्दर गीतोंकी लयसे ये लोग अपना सारा वातावरण संगीतमय बना डालते हैं। इनकी सरलता और सादगी स्तुत्य है। इनका नृत्य बड़ा ही मनोमोहक होता है। स्वच्छन्द प्रकृतिकी गोदमें इनका यह राग और संगीत इनके शुष्क जीवनको सरस और सजीव बनाये रहता है। इसीमें ये लोग अपनी सारी दीनताकी कथाएँ भूल जाते हैं और सन्तोष और प्रसन्नताका आभास अपने जीवनके प्रत्येक दिनमें पा जाते हैं।

संथालोंमें कई शाखाएँ हैं—जैसे सारन-हाँसद, वेसारा, वास्की, विस्कू आदि। ये लोग अधिकतर एक शाखावाले उसी शाखामें विवाह सम्बन्ध नहीं कर सकते। दूसरी शाखा एवं गोत्रमें ही सम्बन्ध करते हैं। वर वधूमें प्रेम उत्पन्न होनेके पश्चात् उनके माता-पिता सम्बन्धकी बातचीत करते हैं। इनके यहाँ प्रति वर्ष एक छः दिनवाला 'वनदान' नामक भोजका आयोजन होता है। इसी अवसरपर वैवाहिक क्रियाएँ सम्पादित की जाती हैं। वर-वधूका चुनाव स्वयं वर-वधूपर ही अधिकांश रूपसे निर्भर रहता है। वे इस कार्यमें स्वतन्त्र होते हैं। इसीलिए इनके सम्बन्ध अधिक दृढ़ होते हैं। पति-पत्नी सच्चे सहायक बनकर जीवनमें सच्चे और ईमानदार उतरते हैं।

ये लोग स्वभावके बड़े सच्चे होते हैं। परिश्रमी और साहसी होनेके अतिरिक्त स्वावलम्बी होते हैं। जंगलकी विभिन्न वस्तुओंको एकत्रित करके बेचते और जीवनोपयोगी सामान ख़रीदते हैं। कताई बुनाई इनकी परम्परागत कला है। अन्य लोगोंकी अपेक्षा ये शराब कम पीते हैं। ये लोग सूर्यकी पूजा करते हैं, जो इनका इष्टदेव है और जिसे ये 'सिंगबोंगा' नामसे पुकारते हैं। भूत आदिको भी मानते हैं। ये लोग बघर्रा (बाघ) की आत्माको पवित्र मानते हैं, यहाँ तक कि बाघकी शपथ इनके लिए एक कट्टर धार्मिक कृत्य समझी जाती है। इस शपथमें ये लोग अपने जीवनको भी बलिदान करनेपर तत्पर होते हैं। स्त्रियाँ हाथीकी भी पूजा करती हैं।

ये मुर्देको जलाते हैं और उसकी अस्थियाँ लेकर दामोदर नदीमें प्रवाहित करते हैं। इस नदीको ये लोग बड़ा ही पवित्र मानते हैं। मृत्युके पश्चात् भोज देना अत्यावश्यक होता है जिसमें सारा समाज एकत्रित होता है। संथालोंके जीवनमें अब परिवर्तन बड़ी तेज़ीसे प्रवेश कर रहा है। इनका सामाजिक तथा नैतिक चरित्र अपेक्षाकृत अधिक उन्नत है।

छोटा नागपुरके पठारमें बसनेवाली जाति—हो

यह पठार मुण्डा भाषा भाषीके लिए एक पुराना आश्रय बन गया है। छोटे छोटे पर्वतोंसे घिरे जंगलोंमें जिसकी भूमि नदियों द्वारा उपजाऊ बन गई है! इन्हीं मुण्डा भाषा भाषी लोगोंकी बस्तियाँ बस गई हैं। इनकी विभिन्न विभिन्न टुकड़ियाँ हैं, जिनमें 'हो' लोग विशेष स्थान रखते हैं। 'हो' जातिके लोगोंका एक अपना अलग इतिहास है। इनकी प्राचीन परम्परा बड़ी सजीव है। ये लोग अपनी प्राचीनतापर आजतक गर्व करते हैं। एक समय था जब इन्होंने इस भूमिको असुरोंसे छीना था और अपने अधिकारमें किया था। इनका उस कामसे बड़ा ही प्रभुत्व स्थापित हो गया था। ये लोग शरीरके बड़े ही पुष्ट होते थे। जिस प्रकार हमारे यहाँ महाभारतकालीन शारीरिक पुष्टता और बल प्रसिद्ध है, उसी प्रकार ये लोग भी विश्वास करते हैं कि प्राचीन कालमें इनकी जातिके स्त्री, पुरुष और बालक कल्पनातीत बलवान् होते थे।

इनकी उत्पत्तिके विषयमें बड़ी मनोरंजक कथा है जो कि सृष्टिकी आदि जातियोंके वैज्ञानिक सिद्धान्तपर अवश्य प्रभाव डालती है। इन लोगोंकी ऐसी धारणा है कि एक बार 'सिगबोंगा' सूर्य देवता अति क्रोधित हुए और उन्होंने अग्नि-वर्षा प्रारम्भ कर दी जिसके कारण सारा विश्व जलकर भस्म हो गया। जब क्रोध शान्त हुआ तो उन्होंने देखा कि सारी सृष्टि नष्ट हो गई। अतः अब उन्हें चिन्ता हुई कि किस प्रकार विश्व पुनः चले। उन्होंने इस बातकी खोज की कि कोई प्राणी जीवित है या नहीं। एक बार सरितादेवी (नगेरा)से भेंट हुई तो उन्होंने सूर्य देवताको आश्वासन दिया और कहा कि एक स्त्री-पुरुष उनके पास है। किन्तु सूर्य देवता उन्हें फिरसे नष्ट न कर दें। अतः उस जोड़ेको अभय वचनका आश्वासन देना स्वीकार हुआ। अब और एक कठिनाई थी—यह जोड़ा भाई बहनका था, अतः एक दूसरेके प्रति आकृष्ट न होनेके कारण सृष्टि उत्पत्तिका कार्य दुष्कर ही था। इस संकटको टालनेके लिए सूर्य देवताने एक 'इल्ली' नामकी मदिरा बनाई जो दोनों प्राणियोंको पिलाई गई। अतः मदोन्मत्त हो जानेके कारण सृष्टिका क्रम प्रारम्भ हुआ। हो लोगोंका विश्वास है कि सारी सृष्टिका उद्गम इसी प्रकार हुआ। इस कथाकी प्रमाणिकतामें आज तक 'हो' लोग इली नामकी मदिराको पवित्र पीने योग्य (पेय पदार्थ) पदार्थ मानते हैं। इसी इली

नामकी सुराका प्रचलन अभीतक इनमें है। 'हो' जातिकी जन-संख्या लगभग छः लाख है। इन लोगोंकी वस्तियाँ इस समय सिंहभूमि, मयूरभंज, क्योंजर, घेक-ताल और तालचर प्रान्तमें फैली हुई हैं। ये लोग बड़े हँसमुख और सीधे स्वभावके होते हैं। अधिक मदिरा-पान करनेके कारण शारीरिक गठनकी पुरानी परम्परा टूट चुकी है। आज ये लोग एक निर्बल और अल्पायु जातिके रूपमें रह गये हैं। क़दके नाटे और रंगके काले होते हैं। दाढ़ी और मूंछ प्रायः नहीं होती है। एक ओर पुरुष जाति निर्बल और कुरूप है दूसरी ओर स्त्रियाँ अधिक पुष्ट और प्रसन्न वदन होती हैं। इनके शरीर गठे हुए और सौन्दर्ययुक्त होते हैं। कारण यह है कि घर और वाहरका प्रायः सारा कार्य स्त्रियाँ करती हैं। जीवनके इसी कठोर परिश्रमने इन्हें वलशाली और सुगठित वना दिया है। पर्दा जैसी इनके यहाँ कोई वात नहीं। पुरुषों जैसा ही इनका पहिनावा होता है। आभूषण स्त्री-पुरुष दोनों पहिनते पाये जाते हैं। कान और गलेकी मालाएँ ही इनके आभूषण हैं।

इनकी वस्तियाँ छोटे छोटे गाँवोंमें वसी हैं। मकान मिट्टीके वनाते हैं। अधिकतर छप्परोंका रिवाज है। एक गाँवमें अधिक कवीले नहीं वसते हैं। इनके भिन्न भिन्न कवीलोंके नाम प्रायः पशु-वृक्ष आदिपर पड़े हुए हैं। जैसे चीता धरती, सर्प, बाँस वत्तख आदि। एक कवीला दूसरे कवीलेके साथ विवाहादि करता है, एक ही कवीलेके अन्तर्गत नहीं, विवाहके कार्य इनके वड़े विचित्र हैं। वर पक्ष कन्याके पिताको कन्याका मूल्य अदा करता है। यह मूल्य पशु आदिके रूपमें दिया जाता है। कारण यह है कि ये लोग शकुन अपशकुनको वहुत मानते हैं। अपशकुन प्रायः निम्न वस्तुओंके दर्शन मात्रसे हो जाता है। मार्गमें गिद्ध, कौआ, तीतर, हरियल, गीदड़, खरगोश, साँप आदि मिल जाय तो महा अपशकुन समझा जाता है और विवाह कार्यादि रुक जाते हैं। विवाह कार्य वड़ा सरल होता है। वधूको वरके घर ले जाते हैं और वधूको धान नाजके ऊँचे ढेरपर विठाते हैं, उसके सिरपर तेल छोड़ते हैं—पका हुआ मांस भात आदि उसे खानेको देते हैं। खानेके पश्चात् वह अपने पतिकी जातिमें समझ ली जाती है। पास ही नृत्यका आयोजन होता है। स्त्री पुरुष सभी नाचते हैं। वरवधूको जौंकी शराव दी जाती है। दोनों एक ही कटोरीमें पीते हैं।

कहीं कहीं तीन दिन पतिके साथ रहकर पत्नी अपनी सखियोंके यहाँ भाग जाती है। पति जाता है और उसे वापस ले आता है। पुनः दोनों साथ साथ

रहने लगते हैं। इनके यहाँ सदाचारकी बड़ी महत्ता है। व्यभिचारका कड़ा दण्ड समाजकी ओरसे भोगना पड़ता है। स्त्रियोंका बड़ा सम्मान होता है। स्वतन्त्रता भी पूरी पूरी होती है। ये बड़ी आत्म-सम्मानवाली होती हैं। विवाह अवस्था प्राय: २० और १८के लगभग होती है। बाल-विवाह इनमें नहीं होता है। इनमें अन्य प्रकारकी भी विवाह पद्धतियाँ प्रचलित हैं जैसे 'हठ विवाह' आदि। कभी कभी कन्या इल्ली लेकर अपने प्रिय वरको चुनकर उसके घर आ बैठती है। घरके अन्य लोगोंके अप्रसन्न होनेपर भी नहीं जाती। कुछ समय पश्चात् हज़ारों अपमान सहकर भी वह अपने इन नये घरवालोंको प्रसन्न कर देती है और फिर वधूकी भाँति ही घरकी स्वामिनी हो जाती है। यह 'अनादेर' कहलाता है। विवाह पश्चात् भोज आदि होता है, जिसमें सब समाज सम्मिलित होता है। ये लोग कृषि करते हैं अत: इनके अधिकतर व्यौहार खेतीसे सम्बन्ध रखनेवाले होते हैं। इनके पुरोहित अच्छी फ़सलके लिए उपासना करते हैं। इनका प्रधान त्यौहार माघी है जो विशेष उत्साहसे मनाया जाता है। वसन्तके पर्वको भी ये लोग बड़े आनन्दसे मनाते हैं। 'हो' लोग नृत्य और संगीतके बड़े प्रेमी होते हैं। पर्वों और त्यौहारोंपर इनकी टोलियाँ खूब नाचती बजाती हैं। इन नृत्योंमें स्त्री-पुरुष बड़े चावसे भाग लेते हैं। बच्चोंको बचपन हीसे नृत्य और संगीतकी शिक्षा मिलती है।

इनकी भाषामें पिताको आपू, माताको आंगा, बड़े भाईको बाउ, छोटे भाईको उन्दी, बहिनको उन्दिग, बाबाको ततम, दादीको जियम, पुत्रको होन, पुत्रीको होनरा, नातीको जइ और पत्नीको इरा कहते हैं।

इनके सबसे बड़े देवता 'सिंगबोंगा' नामसे पुकारे जाते हैं जो आदि पुरुष हैं। नागहरा, मारंगबोंजा और पांगुरा इनके ग्राम देवी-देवता हैं। ये लोग और भी बहुतसे भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं। उनको प्रसन्न करनेके लिए ये लोग मुर्ग़े सुअर आदिकी बलि चढ़ाते हैं। और बना बनाकर मदिरा चढ़ाते हैं। ओझे और पुरोहित आदिका इनके यहाँ बड़ा सम्मान होता है।

ये लोग शवको प्राय: गाड़ते हैं—कहीं कहीं जलाते भी हैं। स्मृति स्वरूप ये लोग स्मारक भी बनाते हैं। बहुधा क़ब्रपर पत्थर इकट्ठा कर देते हैं जिसे उस स्थानको वे लोग बहुत दिनोंतक स्मरण रख सकें। भूत आदिमें इनका बहुत विश्वास है। मृत्यु संस्कार तथा भोज आदि भी ये लोग बड़े धूम-धामसे करते

हैं। तथा वरसी भी मनाते हैं। वरसीको ये लोग 'जंगतोपा' कहते हैं। वरसीके दिन ये लोग शव-दाहके स्थलपर एक चावल भरा घड़ा जिसमें उसकी हड्डी आदि रहती है फूलोंसे सजाकर एक गढ़ेमें गाड़ते हैं। एक सूतका डोरा बाँध दिया जाता है और उस डोरेको खींचकर कोई विधवा उसके घरतक ले जाती है। यह खींचनेकी क्रिया मृतात्माको उस गड्ढेसे निकालनेके निमित्त की जाती है। इसी समय लोग इल्ली पीकर खूब नाचते गाते हैं और खूब भोजन करते हैं।

छोटा नागपुरकी खरिया जाति

विहार उड़ीसा और छोटा नागपुरकी भूमिमें पिछड़ी जातियोंका केन्द्रसा वसा हुआ है। कुछ जातियाँ तो एक दूसरेके साथ ऐसी हिलमिल गई हैं कि अपनी अपनी मूल विशेषताओंको भी विस्मृत कर डाला है। संथाल, ओराँव, मुण्डा, हो, खरिया आदि जातियाँ इस भूमिमें वसी हुई हैं किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं कि जिन्होंने एक स्थानको अपना मान लेना कभी जाना ही नहीं। जैसे पश्चिमी यू० पी०में कंजर और नट आदि इधरसे उधर घूमा करते हैं और एक स्थानपर कभी नहीं रहते हैं। उसी प्रकार छोटा नागपुरकी खरिया जाति भी एक स्थानपर वसना नहीं जानती। ये लोग छोटा नागपुर उड़ीसासे लेकर रायपुर, छिन्दवाड़ा तथा उसके भी आगेतक फैले हुए हैं। ये लोग तीन शाखाओंमें पाये जाते हैं। पहाड़ी खरिया, जो एकदम घुमक्कड़ हैं, और इसी कारण अपना प्राचीनतम रूप अव भी वनाये हुए हैं। ढेलकी और दुध अधिकतर रांचीकी ओर पाये जाते हैं। इन लोगोंकी वड़ी वड़ी वस्तियाँ भी वस गई हैं।

ये लोग अन्य मुण्डा लोगोंकी तरह काले, नाटे और वलिष्ट होते हैं। वहुत ही कम कपड़े पहिनते हैं। इनका पहाड़ी वर्ग तो जंगल जंगल मारा मारा फिरता है। वृक्षोंकी डालियोंपर पत्तियोंकी झोंपड़ी ही इनका मकान होता है और कंद मूल फल तथा छोटे छोटे जानवरोंका मांस ही इनका भोजन होता है। कंजरोंकी भाँति ही इनका सवसे वड़ा अस्त्र 'खन्ता' होता है जो इनकी प्रत्येक प्रकारसे रक्षा करता है। जीवनके सभी उपादान वे लोग इसीसे पाते हैं। अत: यह इनका जीवन संगी हो गया है।

ये लोग वड़े वड़े कुटुम्व वसाकर कहीं नहीं वसते हैं। आठ आठ दस दस के

गिरोहमें घूमते घूमते सैकड़ों मीलका चक्कर लगाते हैं। ज्यों ज्यों परिवार बढ़ता जाता है उसी प्रकार इनकी भिन्न भिन्न टुकड़ियाँ अपना रास्ता पकड़ती हैं। अतः ये बस्तियाँ बसाकर कहीं नहीं पाये जाते। परिभ्रमणके इतने आदी होनेके कारन इनके रीतिरिवाज ज्योंके त्यों बने हुए हैं। अधिकतर जंगली वस्तुएँ (शहद, रेशम, लाख आदि)को इकट्ठा करते हैं और इधर उधर बेचकर मामूली वस्त्रादि मोल ले लेते हैं। ये लोग आज तक पत्थर तथा लकड़ियोंकी रगड़से आग पैदा करते हैं। ये लोग बड़ी स्वच्छन्द प्रवृत्तिके होते हैं। कभी कभी खूब खाते हैं और कभी-कभी फाके ही फाके करते हैं। परिस्थितिने इन्हें बड़ा दृढ़ और सहनशील बना दिया है मानों संकटोंको झेलनेके लिए ही इनका जीवन बना है। इनके बच्चे और स्त्रियाँ भी उतने ही दृढ़ और आपत्तियोंको सहनेके लिए मजबूत होते हैं। स्त्रियाँ बहुत कम कपड़ा पहिनती हैं किन्तु इन्हें गोदना गोदानेका बड़ा शौक होता है। बचपन हीमें हाथ, माथा, मुँह आदि पर बीसियों चिह्न गुदवाते हैं। यही इनका शृंगार है। भांति भांतिकी पत्तियाँ और फूल शरीर पर छेदवाते हैं। यह ज्ञान इन्हें सीधा प्रकृतिके अनुपम शृंगारसे मिला है जिसमें इनका जीवन ओत-प्रोत रहता है। ये लोग पहाड़ी जंगलोंमें घूमते रहते हैं अतः दवा औषधि भी जड़ी बूटियों द्वारा किया करते हैं। ये लोग एक प्रकारकी मदिरा पीते हैं, जिसे 'गोलंग' कहते हैं। इनका खाना-पीना बड़ा सूखा होता है।

इन लोगोंका कार्य विभाजन बड़ा ही स्पष्ट होता है। संभवतः इनके प्राचीनतम समाजने यह कार्य विभाजन किया होगा। अब तो परम्परागत रूढ़ि होकर इनका विश्वास हो गया है कि अमुक कार्य पुरुषोंके लिए है अमुक स्त्रियोंके लिए। यदि व्यतिक्रम हो तो प्रत्येक अपराधीको समाज द्वारा कड़ा प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जैसे हल स्त्रियोंको छूना भी वर्जित है। स्त्रियोंका समाजमें इनके यहाँ आदर होता है। सदाचारका माप ऊँचा है। बाल-विवाह तो होता ही नहीं। यद्यपि विवाह-प्रथाएँ कई हैं, किन्तु मूल्य देकर विवाह अधिक प्रचलित हैं। इनके यहाँ विवाह सम्बन्ध करानेवाला पुरोहित 'डाँडिया' कहलाता है। यही वर-वधू पक्षमें बात करता है। वधूकी कीमत काफी चुकानी पड़ती है। इसे नियत करनेके लिए एक स्वांग किया जाता है जो बड़ा मनोरंजक है। सब गाँव के लोग बैठते हैं तब बहुतसे लड़के लड़कियाँ जानवरोंकी भांति हाथ पैर जमीनमें लगाकर चलते हैं और जानवरोंके चलनेका स्वांग करते हैं। वधूका पिता इन नाटकीय जानवरोंको पकड़नेका

प्रयास करता है वे भागते हैं। जितनेको वह आसानीसे पकड़ लेता है उतने ही जानवर कन्याके मूल्य स्वरूप वर पक्षको चुकाना पड़ता है। कभी कभी तो यह केवल स्वांग मात्र ही होता है। मध्यस्थ ही उसे तय कर लेता है। अब यह प्रथा दिनोंदिन दुर्बल होती जाती है। विधवा विवाह भी इनमें प्रचलित है। इनका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखकर होता है। विवाहमें सेन्दुरका लगाना ही प्रधान क्रिया है।

ये लोग 'पोनो मोसर' नामक देवताकी उपासना करते हैं। उसे ही बलि देते हैं। ये लोग परलोक आदि भावनाओंसे नितान्त शून्य हैं। फिर भी भूत-प्रेतकी प्रथाएँ इनमें प्रचलित हैं। प्रतिदिन निर्वाहके निमित्त रत हुए परिश्रमशील ये लोग पार्थिव अधिक हैं। रोज कमाना और रोज खाना ही इनका दैनिक जीवन हो गया है। भोजन पाकर ही इनको सर्वानन्द प्राप्त हो जाता है। इसी चिन्तामें आतुर हो ये घूमा करते हैं। वनवासी जीवन व्यतीत करनेवाली पहाड़ी शाखा अभी प्राचीन स्वरूप स्थिर किए हुए हैं। तथा दो अन्य शाखाएँ बसती जा रही हैं और नित्य के परिवर्त्तनमें ढलती जा रही हैं।

उड़ीसाकी जुआँग जाति

जुआंग जातिके लोग अधिकतर उड़ीसा प्रांतमें पाए जाते हैं। इन्हें देखनसे पता चलता है कि ये किसी उन मूल वंशजोंकी जातिमें से हैं जो कि इस देशकी प्रारम्भिक जातियाँ कही जा सकती हैं। इनका रहन सहन और सामान जिन्हें ये अपने जीवनके उपयोगमें लाते हैं उस समयके प्रतीक हैं जब मूल निवासियोंने थोड़ा बहुत रहना ही सीख पाया था। आजसे ८० वर्ष पूर्व ये लोग नितान्त आदिम जातिके प्राणी ही थे। सन् १८६६ में जब कर्नल डाल्टनको सर्वप्रथम इनका दर्शन हुआ तो ये लोग सूतका कपड़ा बुनना, वर्त्तन बनाना, धातुका प्रयोग करना न जानते थे। लोहेके लिए इनकी बोलीमें कोई शब्द ही न था। इस समय तक ये लोग प्रस्तर युगके प्रतिनिधि थे। किन्तु इधर अनेक कारणोंसे इन्होंने अपने अन्दर काफी परिवर्तन कर लिया है। प्रस्तर कालकी अवशिष्ट जीवन-परम्परा इनकी लुप्त होती जा रही है और ये अपना प्राचीनतम लबादा छोड़कर परिवर्तनमें ढलते जा रहे हैं। अब इन्हें जंगल जंगल घूमना अच्छा नहीं लगता है और यत्र तत्र जंगलोंमें

ही अपनी छोटी-छोटी बस्तियाँ बसा ली हैं और बाहरके जीवनमें अपने पड़ोसियोंका अनुकरण करनेमें तत्पर हैं। कुछ समय पूर्वके पत्ते जो इनके शरीरको ढँकनेके लिए



जुआंग
इनके पेड़ोंपर बने मकान
ये लोग मुर्गे मुर्गियाँ पालते हैं।

पर्याप्त समझे जाते थे आज अलग होकर वस्त्र धारणकी क्रिया सर्वत्र देखनेमें आवेगी। संभवत: इन्होंने ही पत्तेवाली वस्त्र व्यवस्था सबसे अन्तमें छोड़ी है। इनकी आकृति, शकल सूरत तो अन्य मुण्डा भाषा भाषी लोगोंसे मिलती है। गोदना गोदानेकी प्रथा अन्य मुण्डा जातिके लोगों जैसी ही है। छोटी छोटी झोपड़ियोंकी इनकी बस्तियाँ होती हैं। जानवरोंको पालना मुख्य उद्यम है। अब यत्र तत्र खेती भी करना प्रारम्भ कर दिया है। रहनेके स्थान गोशालोंसे भिन्न होते हैं। छोटे छोटे बच्चे और स्त्री-पुरुष एक स्थानपर रहते, बैठते और सोते हैं और बड़े-बड़े लोगोंके शयनागार भिन्न होते हैं जहाँ उनकी भली भाँति देख-रेख होती है। अपने रहनेके स्थान कभी कभी ये लोग पेड़ों पर बनाते हैं। पेड़ोंकी डालोंपर फूंसके बने हुए

ये झोपड़े प्रागैतिहासिक कालके चिह्न आज भी कहीं कहीं जंगलोंमें दिखाई पड़ते हैं। एक बड़ी सीढ़ी द्वारा उसपर चढ़ते उतरते हैं। ऐसे घर घने जंगलोंमें अधिक सुविधाजनक और अच्छे समझे जाते हैं।

इन लोगोंका भोजन अधिकांशमें माँस ही है। ये प्रत्येक जानवर पक्षी तथा अन्य जीवधारियोंका मांस खा सकते हैं। धनुष बाणका प्रयोग भली-भांति करते हैं और मांसाहार करते हैं। चूंकि जंगलों जंगल घूमते फिरते हैं अतः खाने पीनेकी और भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। जहाँ कहीं खेती होती है, वहाँ चावलका प्रयोग करते है। जंगलोंसे ईंधन काटकर भी पासकी बस्तियोंमें बेचकर धनोपार्जन करते हैं। विशेष विशेष परिस्थितियोंमें पड़कर अपने आपको वैसा ही बना लेते हैं। मुर्गियाँ आदि अधिक पालते हैं। अब धीरे धीरे ये लोग कृषक होते जा रहे हैं।

इनके सामाजिक सम्बंध बड़े सीधे सादे होते हैं। अपने निजके गोत्रको छोड़कर अन्य सभीमें विवाह सम्बन्ध करते हैं। गोत्र आदि अधिकांश जानवरों और वृक्षोंके नामपर होते हैं। वर-वधूको अपने संबंध स्थापित करनेमें कोई रोक टोक नहीं होती है, किन्तु जब एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो बड़ी ईमानदारीके साथ वे जीवन भर निर्वाह करते हैं। विवाह उत्सव भी अति जटिल नहीं होता है। वर-वधू अपने मामा अदिकी गोदमें बैठ जाते हैं और वधू-पक्ष वर-पक्षको लड़की समर्पित कर देता है। औरोंकी भांति ये लोग भी नृत्य प्रिय होते हैं। ऐसे उत्सवोंपर नृत्यका समा बँध जाता है। सब लोग नाचते, गाते और आनन्द मनाते हैं। इनमें कपोत नृत्य, शूकर-नृत्य, चाँग नृत्य, गृद्ध-नृत्य, मुर्गा-नृत्य आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। जिनमें ये लोग उन्हीं विभिन्न विभिन्न जानवरोंके जीवनका अनुकरण करते हैं। यह इनकी नाटकीय लीला बड़ी सजीव तथा मनोरंजक होती है।

किसी भी आपत्तिका कारण ये लोग दैवी शक्तियोंको ही समझते हैं। जब कोई बीमारी गाँवमें फैल जाती है, तो उन्हींके नामपर मनौती मनाते हैं, और सुअर, मुर्गे बकरे आदिकी बलि चढ़ाते हैं। नृत्य करते हैं और उसी प्रकार अपने आपको सन्तोष देते हैं। ये लोग 'बोंगा' नामक दैवी शक्तिको पूजते हैं और उसीमें ईश्वरकी भांति विश्वास रखते हैं। 'बोंगा' की शक्ति प्रत्येकके भीतर पाई जाती है। इनका यह आध्यात्मिक ज्ञान किसी विशेष तर्कपर स्थित नहीं है वरन् परम्परापर निर्धारित है। इसके अतिरिक्त ये लोग भूत-प्रेतोंमें भी विश्वास करते हैं और उनसे डरा करते हैं। सूर्य और पृथ्वीको भी ये पूजाकी दृष्टिसे देखते हैं। ये लोग अपने मुर्देको

जलाते हैं और अस्थियां नदी आदिमें प्रवाहित करते हैं। इनमें श्राद्ध आदिकी भी अपनी प्रथा जारी है।

विन्ध्याटवीके वासी—कोरवा

विन्ध्याटवीका सम्बन्ध हमारे प्राचीनतम इतिहाससे ऐसा जुड़ा हुआ है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता है। इस पर्वतका वर्णन हमारे साहित्यमें वहुत वार आया है। भारतकी सभ्यता कई वार इसके इस पारसे उस पार गई है, पार होते समय क्या पता क्या क्या अनुभव हुए हैं और न मालूम कितनोंने अपने संस्कार इस पर्वतीय प्रदेशमें छोड़े हैं। जिसके अवशेष चिह्न आज भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं हम समझते हैं कि यहाँके निवासी आदि—युगके प्रतीक होंगे किन्तु क्या पता हमारे आने जानेवाले यात्रार्थियोंके अवशेष चिह्न रह गये हों। जो भी हो नवीन खोजें ही इसका निर्णय करेंगी। किन्तु हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि इस समय हम यह जानें कि इस समयके विन्ध्य प्रदेश वासी किस प्रकारके प्राणी हैं और किस प्रकार रहते हैं।

कोरवा जातिके लोग जिस प्रदेशमें रहते हैं वह अधिकांश पहाड़ियों और घने जंगलोंसे घिरा हुआ है। यह प्रदेश दुद्धी तहसील और रावर्टस्‌गंज तहसीलका है। आज तो यहाँ परदेशियोंने अच्छी खासी यत्र तत्र वस्तियाँ वसा ली हैं और ईसाका सन्देश देनेका प्रयास कर रहे हैं, किन्तु फिर भी यह प्रस्तर युगीन जाति अपनी परम्परासे ऐसी लिपटी हुई है कि साधारणतया परिवर्तनका शिकार नहीं हुई है। इस भूमिके एक ओर कन्हर नदी वहती है, किनारे किनारे घना जंगल खड़ा है। वास्तवमें ये कोरवा-लोग कौन हैं—यह तो आज भी खोजकी वस्तु वनी हुई हैं किन्तु कोल लोगोंसे इनका उद्‌गम साधारणतया ज्ञात होता है। मिर्जापुरकी वनैली भूमि ही इनकी आवास-भूमि है। ये लोग रंगके काले, कदके छोटे और सुगठित शरीरवाले वड़े मजवूत प्राणी होते हैं। यों तो ये लोग विन्ध्याटवीके घुमक्कड़ प्राणी हैं किन्तु घने जंगलोंके वीच-वीच जंगल काटकर अपनी वस्तियोंको वसाकर रहते हैं। यह छोटे छोटे गाँव इनकी स्वयंकी काटकर वनाई भूमिपर ही वसे हैं। गाँवमें अधिकांश छोटे छोटे परिवार रहते हैं। इन्हें विधिवत् चलानेके लिए इनकी स्वयंकी एक पंचायत होती है, जिसे 'मैयारी' कहते हैं। यही पंचायत इनकी ऐसी संस्था है, जिसके अनुसार इनके सारे आचरण संयमित होते हैं। इस

पंचायत द्वारा इनके समाजका संचालन होता है। दण्ड-व्यवस्था यही पंचायत निर्धारित करती है। इसका नियमन इनके समाजमें कड़ा माना जाता है। अधिकांश लोग एक पत्नी व्रती होते हैं। सगोत्रको छोड़कर विवाहकी काफी स्वतंत्रता है। स्त्री भी जीवनके कार्योंमें हाथ वँटाती है अतः उसका जीवन भी सुखमय देखा जाता है। हाँ, पर स्त्री गमन इनके यहाँ अति निन्दनीय कार्य समझा जाता है। स्त्रियाँ प्रायः बड़ी परिश्रमशील होती हैं। अधिक परिश्रमके कारण ही उनका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा नहीं रहता है। ये मामूली आभरण ही पहनती हैं। गोदना गुदानेकी प्रथा इनमें भी है। कानोंमें वल्लियाँ पहिननेका चाव इनमें भी है। सूत तैयार करके मामूली कपड़े बुननेका और पहिननेका इनके यहाँ रिवाज है। लड़केका मामा ही विवाह आदिमें मध्यस्थ होता है। विवाहका कृत्य साधारण ही होता है। सिन्दूरसे माँग भरनेकी प्रथा इनके यहाँ प्रचलित है। भोज आदिका उत्सव बड़े आनन्दसे मनाया जाता है। जिसमें सारी बिरादरी बड़े चावसे सम्मिलित होती है। भोजमें मांस-चावल आदिकी प्रधानता होती है। विवाहमें कन्याका मूल्य स्वरूप दहेजका भी चलन है।

कोरवा लोगोंमें सामजिक भावना बड़ी प्रबल है। परिवारके सभी लोग मिलकर खाद्य पदार्थ अर्जित करते हैं और पश्चात् सभी बाँटकर खाते पीते हैं। परस्पर बड़ा स्नेह और सौहार्द होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी विपत्तिमें फंसता है तो सभी मिलजुलकर उसकी रक्षा और सहायता करते हैं। इनका यह उच्च स्तर देखकर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार ये समय पड़नेपर एक दूसरेसे मिल जाते हैं। गाँव उनके पारिवारिक स्नेहसे बंधे रहते हैं। उनकी पंचायतकी दृढ़ आस्था ही उन्हें संयमित रखनेमें समर्थ है।

ये लोग जादू टोनेमें अकाट्य विश्वास करते हैं। यहाँ तक वहिर्जातीय वैवाहिक संबंध भी नहीं करते हैं। डर यह रहता है कि वहिर्जातीय बहू कहीं अन्य जातीय जादू टोने लाकर उनकी जातिमें प्रविष्ट न कर दे। बीमारीको ये लोग जादू टोनेसे ही दूर करनेका प्रयास करते हैं। ऐसे समयमें जादूका अध्यक्ष बैगा बुलाया जाता है और वह अपने बलि, आरती, पूजा, आदि कृत्य करके ऐसे रोगोंके निवारण करनेका प्रयत्न करता है। 'बैगा' लोग भूत प्रेतोंके भी वैद्य समझे जाते हैं। इन लोगोंका कोरवोंमें एक विशिष्ट स्थान हो गया है। सगुन अपसगुनके विधाता भी यही बैगा लोग होते हैं। यहाँ ओरांव लोगोंकी भी बस्तियाँ पायी जाती हैं।

कोरवा लोग अधिकांशतः शिकार आदि और खेतीपर ही गुजर करते हैं। ये लोग धनुष तीरका प्रयोग खूब करते हैं। सिरपर जूट वन्ध केश धारण करते हैं जिनमें तीर खोंसे हुए जंगलमें निर्भीक घूमते हुए दिखाई देते हैं। ये लोग 'खन्ता' भी रखते हैं। अधिकांश गन्दे कीड़े और जानवरोंका मांस नहीं खाते। जंगली चीजोंको इकट्ठा कर बेचते भी हैं खेती भी यत्र तत्र करते हैं। इनके यहाँ 'कर्मा' नामका एक त्योहार होता है जिसमें ये लोग खूब आनन्द मनाते हैं। लड़के लड़कियाँ खूब सजते वजते हैं। भोज आदिका प्रबन्ध होता है। मुर्दोंको जलानेकी प्रथा और गाड़नेकी प्रथा भी है। अन्त्येष्टि क्रियाकी विधि ये लोग भी मनाते हैं। भोज आदिकी व्यवस्था होती है और तमाम बिरादरीको भोज दिया जाता है। ग्राम्य देवता ही इनके उपास्य देव होते हैं, जिनकी ये लोग उपासना करते हैं।

सामाजिक दृढ़ता होनेपर भी इन लोगोंकी संख्या दिन व दिन कम होती जा रही है। कुछ विदेशी लोगोंने भी आर्थिक दासताका शिकार बनाकर इन्हें मूड़ना प्रारम्भ किया है। यह भोलीभाली जाति आज भी यद्यपि अपनी प्राचीन परम्परासे अलग नहीं हुई है, किन्तु यदि इसे अपने विकासकी दिशा न मिली तो ये जाति स्वमेव लुप्त हो जायगी।

९–संयुक्तप्रान्तकी छिटकी हुई बनवासी जातियाँ

पवित्र गंगा जमुना और सरयू तथा उनकी सहायक नदियोंका यह एक ऐसा प्रदेश है जहाँ हजारों जातियाँ आईं और यहाँ होकर हजारों निकलीं। हमारे देशका यह एक ऐसा भाग है जो सभ्यता एवं संस्कृतिकी दृष्टिसे भारत भरका प्रतीक रहा है। वैदिक एवं पूर्व वैदिक कालसे लेकर आजतककी जातियों एवं मानव समूहोंको जो यहाँ आकर बसती रहीं कोई गिन नहीं सकता है। यह गंगाका तट लाखों वर्षसे बाहरवालोंके लिए एक आकर्षणकी वस्तु बना रहा है। जीवनकालकी कौन कहे यहाँ तो मृत्युके पश्चात् भी सभी आनेके लिए लालायित रहते रहे हैं। यह गंगाकी भूमि लौकिक और परमार्थिक जगत् दोनोंके लिए केन्द्र बना रहा है। अतएव यह कहना नितान्त दुष्कर है कि यहाँ आकर कोई भी जाति अपने विशुद्ध रक्तमें रह सकी हो। संमिश्रण और एकता यहाँका प्रधान लक्षण रहा है। आज भी यहाँ अनेकों जातियाँ और वर्ग रहते हुए मिलेंगे। सारी आर्य सभ्यताकी यह लीला भूमि रही है। आना जाना यहाँ लगा ही रहा है फिर भी कुछ वर्ग यहाँ ऐसे आज भी देखे जा सकते हैं जिनको हम साधारण आबादीसे कुछ अलग-सा पाते हैं। यद्यपि वे भी अपने विशुद्ध रक्तमेंसे नहीं हैं किन्तु कुछ अनैक्यका आभास-सा अवश्य दृष्टिगोचर होता है। इन वर्गों तथा जातियोंमेंसे मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं :—

जौन्सर भावरकी खस जाति

जौनसर भावरकी भूमि शिवालक पहाड़ियों और हिमालयकी श्रेणियोंसे घिरी हुई उस घाटीकी भूमि है जो गंगा जमुना और टोंससे घिरी हुई है। ऊँची नीची पहाड़ियाँ, घाटियाँ तथा गड्ढेवाली यह भूमि घनी झाड़ियोंसे भरपूर है। यह देहरादून जिलेके अन्तर्गत है। यहाँके प्राचीन निवासी 'खस' नामसे प्रसिद्ध हैं इनका विवरण हमें प्राचीन साहित्यमें द्रविड़, यवन, शक, पारद, किरात, दरद आदि दस्यु लोगोंके साथ मिलता है। संभवतः यह लोग उसी समयके उन्हीं वर्गोंमेंसे है। किन्तु कुछ लोगोंका यह कथन है कि ये लोग क्षत्रिय राजपूत हैं—कोई इन्हें ब्राह्मण शाखामें मानते हैं और इनका साथ काश्मीरी ब्राह्मणोंसे बताते हैं—कोई

कहते हैं कि ये हिमालयके सहारे सहारे सुदूर पूर्वसे आये हैं —सारांश यह है कि इनका वास्तविक इतिहास आज भी खोजकी वस्तु बना हुआ है।

पहाड़ी जंगलोंमें रहनेके कारण इनकी बस्तियाँ छोटी छोटी होती हैं। मकान लकड़ीके बने होते हैं और बड़े सुन्दर लगते हैं। लकड़ीपर इनकी की हुई खुदाईके चित्र प्रसिद्ध हैं। इनके गाँवमें एक मुखिया होता है जो किसी बड़े समूहके मुखिया द्वारा नामजद होता है। यह बड़ा मुखिया 'थोकदार' कहलाता है। इसीका इनके समाजमें बड़ा आदर रहता है। जितना आदर राजाका समझा जाता है उतना ही वह पूज्य माना जाता है। वह बड़े बड़े झगड़ोंका फैसला भी किया करता है। इनकी पोशाक बहुत सादा होती है। ये ऊनी बंडी और पाजामा पहिनते हैं। स्त्रियाँ भी ऊनी वस्त्रोंका ही अधिक प्रयोग करती हैं।

ये लोग सम्मिलित परिवारमें रहते हैं। एक ही मकानमें कई भाई एक दो या तीन पत्नियों समेत रहते हैं। इनमें सभी स्त्रियाँ सभी भाइयोंकी मानी जाती हैं—चाहे कोई किसी भी स्त्रीके साथ अपना संबंध रखे। जितने बच्चे होते हैं वह सभीके माने जाते हैं फिर भी सबसे बड़ा लड़का बड़े भाईका (चाहे उसकी उत्पत्ति उससे न हो) उससे छोटे छोटे भाईका और भी छोटा तीसरे भाईका। इसी प्रकार सब बच्चोंका पालन पोषण पूरा परिवार करता है। इनकी इस व्यवस्थामें पारस्परिक झगड़े नहींके बराबर होते हैं। परिवारमें बड़ा भाई पूज्य माना जाता है। वास्तवमें मकान उसीके नामका होता है। उसकी आज्ञा सभीको शिरोधार्य होती है। प्रत्येक कार्यमें वह शासक समझा जाता है। स्त्रियाँ स्वयमेव ऐसे घरोंको पसन्द करती हैं जहाँ एकसे अधिक भाई रहते हैं। उसके तीन कारण हैं प्रथम तो उसे किसी न किसी भाईका आश्रय सदैव बना रहता है क्योंकि पुरुष बाहर काम करने आया जाया करते हैं तो कोई न कोई घर पर बना ही रहता है जिससे चोरी आदिका डर नहीं रहता है। दूसरे घरके काममें भी उन्हें सुविधा रहती है। तीसरे वैधव्यकी दशामें उसे उसी घरमें ज्योंका त्यों रहनेका अवसर मिला ही रहता है। उसका जीवन निराश्रित नहीं होता है। एक स्त्री और कई पतिवाले समाजमें देखा जाता है कि या तो संतान होती ही नहीं हैं (यदि ऐसा हुआ तो पति उसे छोड़ देते हैं और फिर उसका जीवन यापन कठिन हो जाता है) और यदि होती भी हैं तो दीर्घ समय तककी प्रतीक्षा करनी होती है। कभी-कभी तो इन्हें ५, ५ वर्ष तककी प्रतीक्षाके पश्चात् संतानोंके दर्शन होते हैं। तथा अपेक्षाकृत लड़कोंकी संख्या अधिक होती है तथा

कुछ समय पश्चात् समाजमें लड़कियाँ मिलना दुष्कर हो जाता है और नाना प्रकारकी बुरी प्रथाएँ समाजमें स्वयमेव उत्पन्न हो जाती हैं। जिनसे समाजकी शक्ति दुर्बल होती जाती है।

इनके समाजमें उन स्त्रियोंका अधिक आदर होता है जिनके संतानें अधिक होती हैं। इनके यहाँ स्त्रीके दो स्वाभाविक क्षेत्र हैं। प्रथम ससुरालमें जहाँ उन्हें काफ़ी संयमसे रहना पड़ता है और परिवारमें ही रहकर अपनी कामनाएँ तुष्ट करनी पड़ती हैं। दूसरे नैहरका जीवन जहाँ पूर्ण स्वच्छंद होकर ये विचरण करती हैं। यहाँ संयम तथा आचरणका वह उच्च आदर्श कदापि नहीं होता है जोकि ससुरालमें रहता है।

ये लोग बहुत दीन होते हैं। इसी आर्थिक स्थितिके कारण ये लोग कई अर्थोंमें पिछड़े हुए हैं। यूँ तो परिश्रमी होते हैं किन्तु पहाड़ी इलाकोंमें रहते रहते इन्हें बाह्य जीवनका स्वाद नहीं मिला है और अपनी आर्थिक दशाको नहीं बदल पाए हैं। ये लोग पाँडवोंको अपना पूर्वज मानते हैं।

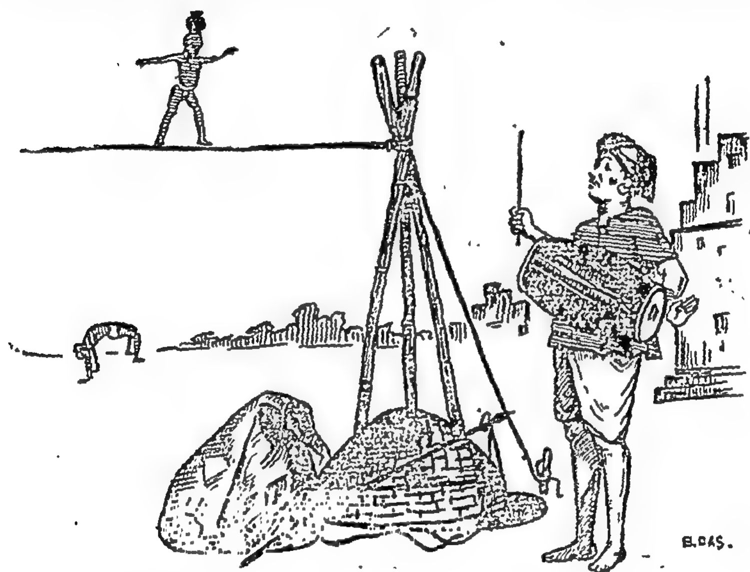
बहेलिया

यह एक वीर और साहसी जाति है। किसी समयमें चाहे ये भले ही घुमक्कड़ी जीवनके आदी रहे हों किन्तु अब ये लोग अपनी छोटी छोटी बस्तियाँ बसाकर रहने लगे हैं। इनमें क्षत्रिय गुण विशेष रूपसे विद्यमान हैं। ये लोग अभी भी पक्के शिकारी होते हैं जंगलोंमें निकल जाते हैं चिड़ियोंका शिकार करते हैं—पकड़कर बस्तियोंमें लाकर बेचते भी हैं। शहद एकत्रित करते हैं और उसे बेचते हैं; लाख एकत्रित करते हैं। इन सबके अभावमें जंगलकी लकड़ी ही तोड़कर बस्तीमें लाकर बेचते हैं। ये बड़े परिश्रमी तथा फुर्तीले होते हैं। पेड़ोंपर चढ़नेमें कुशल होते हैं। अब ये लोग सर्वत्र खेती आदिके कार्योंमें लग गये हैं और पुरानी प्रवृत्तियोंसे शून्य होते जा रहे हैं।

नट

ये लोग घुमक्कड़ी जातियोंमें प्रधान वर्गके हैं। बड़े फुर्तीले, सुसंगठित बदनवाले और बड़े तेज होते हैं। इनका प्रधान कार्य नाट्य करना होता है। रस्सीपर

नाचते, दो दो घड़ोंको सिरपर रखकर एक पतली रस्सीपर झूलझूलकर नाच दिखाते हैं। इनका बदन इस प्रकार सधा रहता है कि जिसे देखकर आश्चर्य होता है। सन् १९३४ में एक विदेशी कम्पनीने यहाँके कुछ नटोंको अपने यहाँ नौकर रखकर उनकी कलाबाजी दिखा दिखाकर जर्मनी, फ्रांस आदि यूरोपीय देशोंमें करोड़ों रुपया कमाया था। ये लोग आज भी घूमते फिरते हैं। यत्र तत्र नाच आदि कलाबाज़ीसे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये लोग भोले भाले ग्रामीणोंको औषधि



नटोंका नृत्य

रस्सीपर खड़े, घड़ा सिरपर रक्खे हुए कैसी सावधानीसे नृत्य कर रहा हैं। इनका नाट्य बड़ा अद्भुत होता है।

आदि देनेका भी कार्य करते हैं। इनकी स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर होती हैं जिनका कभी कभी वे अनुचित उपयोग किया करते हैं। ये लोग चोरीकी विद्यामें प्रवीण होते हैं जोकि इनकी गरीबीका कारण होती हैं। ये शिकारपर भी जीवित रहते हैं। वनैले छोटे छोटे जानवरोंको मारकर खाते हैं। यदि इन लोगोंके खेलोंको व्यवस्थित रूपसे एकत्रित करके प्रदर्शित किया जावे तो इनकी आर्थिक दशाको

एक विशेष प्रकारका सहारा मिल सकता है। अन्यथा धीरे-धीरे इनकी नाटयकला लुप्त होती जायगी।

कंजड़

ज्ञात ऐसा होता है कि यह 'खन्-जड़' शब्द है जड़ी बूटियोंके खोदनेका काम करते हैं। जहाँ देखिये अधिकांश शरीर नंगा किये हुए और एक 'खंता' अपने कंधेपर रक्खे हुए, दो तीन शिकारी कुत्तोंको पीछे लगाये हुए ये लोग यत्र तत्र घूमते हुए मिलेंगे। ये लोग चिड़ियाँ, मेढ़क, साँप, आदि तथा खरगोश, स्यार, भेड़िया, सुअर और गोह आदि जानवरोंका शिकार करते हैं। इनका एक मात्र अस्त्र 'खंता' है। जिससे ये लोग जड़ी वूटियोंको खोदकर खाते हैं। कहीं कहींपर ये लोग वसकर खेती आदि भी करने लगे हैं। ये लोग भी अपनेको राजपूत कहते हैं और अधिकतर राजस्थानकी राजपूत रियासतोंकी ओरसे ही आते हैं। इनके अतिरिक्त सांसिया, हवूडा, भाँतू आदि भी इन्हीं लोगोंकी तरह घूमते फिरते हैं। गदहोंपर अपना सामान लादे रहते हैं तथा वस्तीके किनारे उतरकर लोहे आदिकी छोटी छोटी वस्तुएँ वनाते हैं। इनका जीवन अभी भी घूम फिरकर पेट भरना रहता है। ये लोग वड़े परिश्रमी होते हैं। ये लोग काली तथा भूत प्रेतोंके पूजक होते हैं।

डोम और पासी

कुछ मानव शास्त्रियोंने इन्हें द्रविड़ोंसे भी पूर्वकी किसी जातिका माना है आर्योंकी समाज व्यवस्थासे ये लोग दूर रक्खे गये और आजतक ये लोग अछूत अवस्थामें ही पड़े हुए हैं। इनके उत्पत्तिके संवंधमें एक और कथा हमें मिलती है। राजा वेणु व्राह्मण विरोधी था। व्राह्मणों द्वारा उसका वध हुआ। उसके कोई संतान न थी व्रह्माने उसके शरीरको मथा। इस क्रियाके पश्चात् उसकी एक जाँघसे एक भयंकर काले व्यक्तिकी उत्पत्ति हुई जोकि डोम हुआ और इस जाति-का पूर्वज कहलाया। इस डोमका वंश आजतक वेणु वंशी कहलाता है। ये लोग रंगके काले, कदके नाटे और सुसंगठित शरीरके होते हैं। इनका रहन सहन, रीति रिवाज, वोली, उत्सव आदि सभी हिन्दुओं जैसी होती हैं। इन्हें इनकी सेवा करते करते हज़ारों वर्ष व्यतीत हो गये हैं। ये लोग कहीं कहीं सुअर पालते हैं तथा

अन्य दास्य-कर्म करते हैं। ये लोग हिन्दू समाजका एक महत्वपूर्ण कार्य संपादन करते हैं और अपनेको सच्चे अर्थोंमें 'श्मशान वन्धु' सिद्ध करते हैं। कुछ लोग आज-तक अपनेको राजा हरिश्चन्द्रवाली परम्परामें गिनते हैं। जो कछ हो इनका कार्य और सेवा अवश्य महत्त्वपूर्ण है। इस सेवासे समाज कभी उऋण नहीं हो सकता है। डोम और पासी लोग कहीं कहीं खेती आदिका भी कार्य करते हैं। साधारणतया म्यूनिसपैल्टियोंमें नौकरी करते—तमाम शहरकी गंदगीको साफ करते और कहीं कहीं चटाइयाँ बनाते, सुअर मुर्गे पालते हुए भी पाए जाते हैं। मद्यपानका विशेष प्रचार है जिसमें ये परिश्रमी लोग अपनी सारी कमाई फूंक देते हैं। ये लोग भूत-प्रेतों आदिकी पूजा करते हैं। अपनी पंचायत द्वारा सभी झगड़ोंको निवटाते हैं। इनके कार्य एवं सेवा कार्योंको देखकर आजके भारतीय समाजका पूर्ण कर्तव्य है कि इन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी दृष्टियोंसे उन्नत वनाये और इन्हें ऊँचा उठानेका पूरा उत्तरदायित्व अपने सिरपर लें।

भर

यह जाति आज अपनी प्राचीन परम्परासे लुप्त है। ये लोग अधिकांशमें गाजीपुर, मिर्जापुर, बलिया, आजमगढ़, जौनपुर आदि जिलोंमें रहते हैं। इनका प्राचीन इतिहास वड़ा ही धनी रहा है। एक समय था जवकि इस जातिके विभिन्न विभिन्न राज्य थे (चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों) इन्होंने तीन वार क्षत्रिय राजा अयोध्याको परास्त किया था और उनके आधिपत्यसे अपने विभिन्न गढ़ोंको मुक्त किया था। एक समय था जवकि इनके मिर्जापुर, जौनपुरमें छोट छोटे गढ़ थे और छोट छोटे राज्य थे। भारदोही जिसे आज भदोही कहते हैं इनका एक समुन्नत राज्य तथा गढ़ था। मिर्जापुरमें ऐसे अनेकों गढ़ोंका पता लगता है। इनकी धार्मिक परम्परा भी विभिन्न थी। इनकी निर्मित मूर्तियाँ मुँड़े हुए सिरकी होती थीं तथा इनकी अन्य शिल्पकला भी आदि शिल्पकलासे नितांत भिन्न ज्ञात होती है। धीरे धीरे क्षत्रियोंने इन्हें राज्यच्युत किया और कालान्तरमें इन्हें वेघरवारका वना दिया। तवसे आजतक अपनी राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक परम्परासे छिन्न भिन्न होकर ये लोग दास्य-कार्यमें ही प्रवृत्त रहे हैं। आज इनके प्राचीन अस्तित्व शून्य हो चुके हैं और हिन्दू समाजके निम्न वर्गमें मिलजुल गये हैं। ये अधिकांशमें खेतीके कार्यमें मजदूरी आदि करते हैं। इसी प्रकार परिश्रम करते हुए अपना जीवन यापन किया करते हैं। इनके उन्नत करनेका भी एक वड़ा उत्तरदायित्व आजके भारतीय समाज पर है।

१०—लंकाके बनवासी वेद्दा

[भारतकी प्राचीनतम जातियोंमें वेद्दा भी एक मुख्य जाति है। ये जाति आज भी अतीतकी आरम्भिक अवस्थामें रहती हुई पाई जाती है। आग पैदा करनेका वही पुराना ढंग इनमें आज भी प्रचलित है। वाह्य जगतका उन्नत मानव समाज आज तक इन बनवासी वीरोंको विस्मृत किए बैठा है मानों ये प्राणी मानव हैं ही नहीं ?]

भारतवर्षके दक्षिणमें जो द्वीप वसा है उसे हम आज लंकाके नामसे पुकारते हैं। इस भूमि का अस्तित्व कवसे है और भारतसे उसका संवंध क्या रहा, वह इसी भारत भूमि का कोई अंश है अथवा किसी अन्य जलमग्न महाद्वीपका अवशिष्ट भाग है—यह आज कहना कठिन है। फिर भी हमारे साहित्यमें लंका-वासियोंके वर्णन प्राचीनतमकालसे आते रहे हैं। सवसे पहिले ऋग्वेदके चतुर्थ ग्रन्थके चतुर्थ स्तोत्रमें हमें इनके वर्णन राक्षस नामसे मिलते हैं। राक्षसोंकी आकृति कुछ विभिन्न प्रकारकी थी जो भयंकरताकी सूचक ज्ञात होती है। इसके पश्चात् सामवेदमें भी हमें इनका वर्णन क्वी नामक राक्षसके रूपमें मिलता है। पश्चात् रामायण कालमें तो इनकी समृद्धि उच्चतर अवस्थापर थी। इसके पश्चात् अवनति प्रारम्भ होती है। इसी समय एक अन्य जाति यक्षका वर्णन मिलता है। जिस समय वौद्ध कालमें भारतसे वहुत लोग लंकामें आ आकर वसने लगे उसी समय ज्ञात होता है कि इन प्राचीन जातियोंको भागकर घने जंगलों और पहाड़ोंकी शरण लेनी पड़ी। राजवलय आदि वौद्धकालीन साहित्यसे पता चलता है कि पुरानी जातियाँ किस प्रकार वनोंकी ओर भगा दी गई। सर्वत्र वौद्ध वस्तियाँ वसने लगीं और ये प्राचीन लोग—चाहे वे राक्षस रहे हों या यक्ष—सघन वनोंकी ओर चले गये। इसी कालमें इनका नाम व्याधा पड़ा जिसका कारण अज्ञात है। इसी व्याधा शव्दसे वेद्दा वना। मगधके यात्रियों द्वारा यह वर्णन अवश्य मिलता है कि कुछ डाकू लोग समुद्र तटके एकान्त स्थानोंमें इन्हें लूट लिया करते थे और इनके व्यापारमें वाधा पहुंचाते थे। संभवत: इसी वाधा डालनेवाली जातिको इन्होंने 'व्याधा' नामसे पुकारना प्रारम्भ कर दिया हो और पश्चात् इसी 'व्याधा' से विगड़कर यह शव्द वेद्दा हो गया हो।

यह प्राचीन जाति अपनी प्रारंभिक अवस्थासे वहुत आगे नहीं वढ़ सकी है आज तक ये लोग पत्थरोंको रगड़कर आग जलाते हैं। वेद्दा लोग तीन समूहों पाए जाते हैं। प्रथम-जंगल वासी वेद्दा जो केवल शिकार पर ही अपना जीवन याप करते हैं। ये लोग केण्डियन पहाड़ियोंमें पाये जाते हैं। द्वितीय ग्रामीण वेद्दा ज गाँवों में झोपड़ियाँ डालकर वस रहे हैं। तृतीय-तामिल भाषा भाषी वेद्दा जो अधि सभ्य और होशियार होते हैं। ये लोग विवाहोपरान्त कानोंमें वालियाँ पहिनते हैं स्त्रियाँ चाँदीकी चूड़ियाँ पहिनती हैं। सुन्दर वाल काढ़ती हैं, उनमें फूल लगात हैं। ये लाल और नारंगी रंगोंको बहुत पसन्द करती हैं। प्रथम और द्विती प्रकारके लोगोंकी संख्या अधिक है।

ये लोग पहाड़ियों और घने जंगलोंमें छायादार वृक्षोंके नीचे झोंपड़ियाँ बना हैं जिनमें पहिले पतली पतली लकड़ियाँ लगाते हैं और ऊपरसे घास फूंस आ बिछा देते हैं। इनकी झोंपड़ियाँ बड़ी सादी होती हैं, इन्हींमें वे थोड़े बहुत दि रहकर इधर उधर निकल जाते हैं और फिर कहीं जाकर इसी प्रकारकी झोंपड़ी वन लेते हैं। ये लोग तीर, कुल्हाड़ी, भाले, वर्छी आदि बनाते हैं। इनका धनुष काप लम्बा होता है, जिसे ये लोग कोलनया कीकला नामक लकड़ीका वनाते हैं, इन यहाँ वन्दर, चूहा, मोर, बैल और हाथीका मांस खाना वर्जित है। ये लोग शह मृगछाल, सींग, आदि वस्तुएँ एकत्रित करके पासके वाजारोंमें बेच आते हैं। ये लो शिकार करनेमें वहुत प्रवीण होते हैं। शामको इस ताकमें बैठे रहते हैं कि तालाव किनारे कव कोई जंगली जानवर पानी पीने आवे तो उसका ये शिकार कर लें कभी कभी ये लोग लेटकर पाँवमें धनुष दवाकर तीर छोड़ते हैं और अपने शिकार बड़ी सफलतासे मार लेते हैं। तीरोंकी नोकें लोहेकी तेज वनी रहती हैं जिस शिकार करनेमें कभी कोई चूक न हो। मछलियाँ भी मारते हैं और खाते हैं। ये लो घरोंमें जितने ही आलसी दिखाई पड़ते हैं उतने ही जंगलों में फुर्तीले और साहस दिखाई पड़ते हैं। ये लोग निर्भय होते हैं। न किसी जंगली जानवरसे डरते हैं किसी अन्य शक्तिसे। कभी कभी तेंदुवा, भेंसा तथा भालूसे खूब डटकर सामन करते हैं। और घंटों तक जमकर युद्ध होता है। ये लोग शिकार खोजनेमें इत कुशल होते हैं कि घास और मिट्टी सूंघकर वता देते हैं कि किस ओर कौन जंगल जानवर मिलेगा और वह कितनी दूर है। जंगली जानवरकी आवाज सुनक भी इन्हें ठीक दूरीका ज्ञान हो जाता है। ये लोग हाथियोंको भी पकड़ते हैं। चन्द्रमा

को उजेली रातोंमें हिरन और सुअरोंका शिकार बड़ी कुशलतासे करते हैं। शिकारके अतिरिक्त ये लोग शहद बड़े शौकसे खाते हैं। जंगली उत्पत्तिपर ही इनका अधिक जीवन चलता है।

ये लोग स्वभावके बड़े भोले भाले प्राणी हैं। इनकी सच्चाई और ईमानदारीमें कोई कसर नहीं है। न इन्हें किसी प्रकारका भय है और न किसीसे लज्जा। साधारण



लंकाके निवासी वेद्दा
शिकार करनेका एक दृश्य

तौरसे ये लोग इतनी आवाजसे बोलते हैं कि बाहरी लोगोंको यह मालूम पड़ता है कि वे परस्पर क्रोधमें लड़ रहे हों। किन्तु ऐसी बात नहीं—उनकी आवाज़ ही तेज और भारी होती है। इनके समाजमें स्त्रियोंका समान अधिकार होता है। अपनी स्त्रीके लिए ये लोग अपना जीवन उत्सर्ग तक करनेको तैयार रहते हैं। स्त्रियाँ भी बड़ी सच्ची और ईमानदार होती हैं, बड़ी परिश्रमी होती हैं। तथा प्रसन्न-

चित्त और विनोदी स्वभावकी होती हैं। कहीं कहींपर ये लोग चावलकी खेती आदि करने लगे हैं। ये लोग कुत्ते पालते हैं जो इन्हें शिकार करनेमें सहायता देते हैं। भैंसें पालते हैं जिनके दूध आदिका व्यवहार खूब शौकसे करते हैं। ये लोग वस्त्र तो नाममात्रको ही पहिनते हैं।

नेवाइल महाशयके अनुसार इनकी मुख्य उपजातियाँ इस प्रकार हैं:—वंदारवंश, मोरानी, उनापान, उरण, नमद, उरावादिया, आर्यवलान, कोविल वनामी, तला, तंबलगाय, कत्तकलम् आदि। इनकी विवाह प्रथा सादा और सरल है। इनका विवाह जल्दी ही होता है। वर वधूमें किसी प्रकारके लुके छिपे रूपसे प्रेम व्यवहार नहीं चलते हैं। माता पिता अविवाहित बालक बालिकाओंका बहुत ध्यान रखते हैं। जब कोई युवक किसी युवतीसे विवाह करना चाहता है तो वह कन्याके माता पितासे अपनी इच्छा प्रकट करता है। स्वीकृति मिलनेपर वह कन्याके माता-पिताके साथ रहने लगता है और उस कन्याको स्त्रीवत् समझने लगता है। कन्या भी उसे उसी रूपमें देखने लगती है और व्यवहार करने लगती है। किसीकी अस्वीकृति होनेपर दोनों अपना अलग अलग साथी खोजते हैं और वैमनस्यका किंचितमात्र भी व्यवहार परस्पर नहीं करते हैं। विवाहका कोई विशेष कृत्य नहीं होता है केवल दोनों परिवारके लोग हँसी खुशी भोजन आदि करके उत्सव समाप्त कर लेते हैं। पारिवारिक जीवन इनका सुखमय होता है। दोनों साथी अपना जीवन उत्तरदायित्वपूर्ण व्यतीत करते हैं।

इनका जीवन ऐसा नियमित होता है कि अपराध तो नाममात्र को भी नहीं होते हैं। सबसे बड़ा गुण इनमें यह है कि लोग अन्य वनवासियोंकी भांति शराब और तम्बाकू आदिके व्यसनसे बहुत दूर हैं। मृत व्यक्तियोंको ये लोग न तो जलाते हैं और न गाड़ते हैं। शवके लिए गड्ढा खोदना ये व्यर्थका परिश्रम समझते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि जब आत्मा निकल गई तो व्यर्थका जड़वत् शरीर रह गया जिसका कोई मूल्य नहीं। वह उसी प्रकार है जैसे कोई भी जड़वत् पदार्थ, पत्थर, लकड़ी इत्यादि। शवको ये लोग झाड़ियों या पत्तोंमें फेंक देते हैं या छिपा देते हैं। चार पाँच दिन बाद सभी लोग आकर उस स्थानको फिर देख जाते हैं। आत्माकी शांतिके लिए वे उसकी विदाईमें दावत करते हैं जिसमें सभी परिवार सम्मिलित होते हैं।

इनमें पुरुषोंके नाम इस प्रकारके होते हैं—पतवेंदा, वोंदा, कंदा, कुंभा, कैरा, सिरीपाला, रोदा, नीला, रंगा, वीरा हिराता, पत्तर, किरीतांदा इत्यादि।

स्त्री वर्गमें इस प्रकारके नाम होते हैं :—वाली, रंगी, अत्ती, किरी कन्दी, हुदी, गरू, रामी, लत्ती, विरत्ती, कुम्भी, पत्ती, काली। इनकी बोली काइली भाषा है जिसका अर्थ होता है 'जंगली-भाषा'। यह सिंहलीका विगड़ा रूप है। इस बोलीमें कुछ वस्तुओंका नाम इस प्रकार है :—चिड़ियाको कप्पिया, भैंसको मन्या, शिशुको कैंकुला, हिरनको केत्रुला, घरको गमग्राम, कुत्तेको कुक्का और किक्की देवताको हुरा, हाथीको बोता, बोती, पिताको अप्पा, मनुष्यको मीना, मीनू, पत्नीको नैना, वाणको इत्तला, धनुषको दुन्गा, झोपड़ीको लुंगी, नदीको दिया-गाम, वृक्षको गुई, पानीको दिया, क्यों को ऐ, हांको हा—इता तुमको तोंव या तोपा कहते हैं।

इनके समूहका एक एक मुखिया होता है जो चुनाव द्वारा तै होता है। इसका कहना सभी मानते हैं। सभी लोग इसको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। इनके समूह वहुत छोटे छोटे होते हैं। ये लोग एकान्त रहना अधिक पसन्द करते हैं। अपनेसे वाहरके वर्ग या समुदायसे मिलना अधिकतर पसन्द नहीं करते हैं। ये लोग वहुतसे देवोंको मानते हैं। 'स्कन्ध' की पूजा करते हैं; गलेयका जो पहाड़ीका देव होता है, व्याधादेव जो इनका प्राचीन देव है, किरी अम्मा (अर्थात् गिरि अम्मा पार्वती) मायाकिनी, जंजी वांदार अर्थात् भैरव, कालूयाका, कान्दीयाका, हुनियन याका, वातायाका आदि पर्वतीय देवोंको मानते हैं और पूजते हैं। इसी उत्सवमें इनके यहाँ नृत्य आदिका प्रवन्ध होता है जिस पहाड़ीकी चोटीपर नृत्य होता है उस स्थानको देवाला कहते हैं। इस उत्सवके लिए वुध और शनिवारका दिन नियत होता है। जुलाई, अगस्तमें, यह उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सवके दो दिन पूर्वसे ही नृत्य करनेवाले घरमें नहीं जाते हैं, मांस आदिका सेवन नहीं करते हैं। शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं—सुअरको न छूते और न उसका दर्शन करते हैं। यह नृत्य शामको होता है। नृत्य करनेवालेको 'अनुमैतिराल'के नामसे पुकारते हैं। ये खूब सजते हैं। फूल आदि हाथमें लिए रहते हैं। नृत्य करनेवालेके साथ एक कारीगर और एक धोवी रहता है। देवाला तक जुलूस निकलता है। खूब भीड़भाड़ होती है, वाजे वजते हैं, नृत्य करनेवाला कारीगर और धोवीके साथ पहाड़ीपर चढ़ता है। पहाड़ीके तीखे शिखरपर चढ़कर नृत्य प्रारंभ होता है। एक पुरुष थक जाता है तो दूसरा उसके स्थानपर आ जाता है। सभीके थकनेपर नृत्य वंद होता है। भीड़ सहित जुलूस वापिस होता है। स्त्रियाँ भोजन वनाती हैं। खूब दावत होती है

जिसमें चावल, नारियल, कढ़ी, तरकारी, आदि बड़े सुन्दर सुन्दर मिट्टीके बरतनोंमें रखकर खाते हैं। कभी कभी ऐसे उत्सवोंमें सैकड़ोंकी भीड़ होती है।

इस प्रकार इनके जीवनमें पर्याप्त मनोरंजन देखनेको मिलता है। इनका जीवन विनोद प्रिय होनेके कारण अधिक दुखद नहीं होता है। जंगलमें रहकर भी ये लोग संतोषी जीव हैं। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब है और उसका लाभ उठाकर बहुतसे विदेशी धर्मावलम्बियोंने इन्हें अपने धर्ममें परिवर्त्तित किया है किन्तु इनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थितिमें किसी प्रकारका लाभ नहीं हुआ है कुछ समयसे वेद्दा लोग शहरोंकी ओर आने लगे हैं और अपना जंगली भयंकर जीवन छोड़ते जा रहे हैं।

वन और वनवासी

आज हमारे देशके राष्ट्रीय उत्थानके युगमें वे सव प्रयत्न हमारी नीतिसे मेल नहीं खाते हैं जो वृटिश सरकार, धर्म-मिशनरियों, उद्योगपतियों, नृतत्त्व विज्ञानवादियों द्वारा तथा गांधीजीके आदर्शोंसे प्रेरित होकर कतिपय समाज सुधारकों द्वारा समय समय पर वनवासी जातियोंकी समस्याके हल स्वरूप अभी तक किए गये हैं। न तो हम वृटिश सरकारकी 'रिश्वत' वाली नीति[1] अब स्वीकार कर सकते हैं, न कर्नल वेजवुडके उन शब्दोंमें कोई तथ्य है कि "भारतीय वनवासी जातियोंका प्रवन्ध नहीं कर सकते हैं। अतः वृटिश सरकार नृतत्त्व शास्त्रियों (Anthropologists)की देखरेखमें उनका प्रवन्ध करे। भारतीय इन जातियोंको नष्ट कर देंगे। इनपर पूर्ण रूपसे वृटिश प्रभाव रहे, मिस्टर चर्चिलको प्रसन्न करनेके हेतु उन्होंने यह भी कहा कि "अफ्रीकामें हमने इसी नीतिसे सफलता पाई और भारतमें भी वनवासी जातियोंका एक मात्र हल क्रिश्चियन मिशनरियोंके हाथ हैं"।[2] इस दृष्टिसे इन जातियों पर शासन करते हुए आज १७५ वर्ष हो गए, किन्तु क्या आज इस हलका कोई सुपरिणाम हुआ? आज इन जातियोंमें क्या सुधार हुआ है? हाँ जो साम्राज्यवादी षडयन्त्र चलना प्रारम्भ हुआ था कि भारतीय वनवासी भूमिके टुकड़ोंको साम्राज्यवादी उपनिवेशोंमें परिवर्तित कर दिया जावे और वे उपनिवेश वाह्य साम्राज्योंके सुरक्षित चरागाह रहें—उसका भण्डाफोड़ अवश्य हो गया। साथ ही साथ इस विभाजनकी प्रवृत्ति

---

[1] "बंगाल बिहार उड़ीसाके लड़ाकू वनवासी नेताओंको ब्रिटिश सरकारने शान्ति रखनेके निमित्त १५ हज़ार रुपया प्रतिवर्ष सन् १८३०से ही रिश्वतके रूपमें देना प्रारम्भ किया था, जिससे वे सरकारके विरुद्ध विद्रोह न करें यह रुपया १०० वर्षतक दिया जाता रहा।" साथ ही फ़ौजके रिटायर्ड व्यक्तियोंको इन जातियोंके आसपास वसाया गया जिन्हें काफ़ी पेंशिनें मिलती रहीं। देखिए 'The Aborigines, G. S. Ghurye'.

[2] पार्लियामेंटरी डिबेट V Series

उत्पन्न करनेका सारा उत्तरदायित्व उस हल पर ही है, जिसका प्रभाव विहार तथा आसामके क्षेत्रोंसे मन्द स्वरमें सुनाई पड़ रहा है। क्रिश्चियन बना डालनेका प्रयत्न केवल भारतकी एकताको दुर्बल वना डालनेका था। उसके भीतर मानवता स्वप्न मात्रको भी न था। इस हलने भारतीय एकताकी वृद्धि न करके भारतीय प्रश्नोंको जटिल बना डालनेका ही कुचक्र रचा[१] इससे वनवासी जातियोंकी उन्नतिकी आशा ही क्या थी ?

हम आज यह भी बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं कि कोई भी पूंजीपति तथा अन्य व्यवसायपति इन वनवासी क्षेत्रोंमें प्रवेश करके किसी भी प्रकारके उद्योग प्रारम्भ कर के भोले-भाले भूखे निरीह वनवासियोंके श्रमका शोषण करे और उन्हें क्रीतदास[२] वना डाले। इस प्रकारका चतुर्दिक अपहरण चाहे व्यापारियों द्वारा हो, राज्य द्वारा हो अथवा किन्हीं धर्मावलम्बियों द्वारा हो, मानवताके नाते भी सहन नहीं किया जा सकता है[३]। वैज्ञानिक कहे जानेवाले हल नितान्त थोथे हैं जिनमें प्रतिपादित किया जाता है कि 'चूंकि वनवासी जातियां सभ्यता और विकासकी विभिन्न अवस्थाओं व मानव स्तरोंकी सूचक हैं अतः नृतत्त्व विज्ञान[४] की सामग्रीके

---

[१] 'If the aboriginal becomes a Christian he generally finds himself deprived of the free and natural reactions to which he is accustomed and he sinks into moral and economic degradation.'

Dr. Verier Elvin.

[२] स्मरण रहे कि वनवासी जातियोंका सभी प्रकारका शोषण राज्य व रियासतों द्वारा, धर्मावलम्बियों द्वारा तथा व्यापारियों द्वारा अभीतक खूब हुआ है। देशी रियासतोंमें आज भी इनका क्रय विक्रय तक चलता है, जिसके लिए किसीको भी चिन्ता नहीं ? देखिए भील आश्रम-वामनिया (इन्दौर) की वार्षिक रिपोर्ट।

[३] वर्दवान, मानभूमिकी कोयलेकी खदानें जो सन् १९२० से यूरोपियनों द्वारा संचालित की गई तथा रेलवे कम्पनियां जो व्यवसाइयों द्वारा चलाई गई तथा चायकी खेती जो यूरोपियन या देशी उद्योगपतियों द्वारा की गई इन सबमें वहांकी वनवासी जातियोंके श्रमका पूरा पूरा शोषण किया गया है।

[४] Anthropology

रूपमें ये प्रदर्शिनी-गृह वने रहें जिनसे इनका अध्ययन सभी कालोंमें किया जा सके। इस प्रकारके तथाकथित विशिष्ट मस्तिष्क[1] वाले वैज्ञानिक अपने मानसिक मनोरंजनके लिए कितने ही उन्हीं जैसे मानवसमूहोंको टूटे फूटे बर्त्तनों तथा खंडहरोंका स्वरूप देकर उनके साथ मानसिक खेल खेलनेका और दूसरोंको स्वांग दिखानेका प्रयत्न करना चाहते हैं। "कोई व्यक्ति या जाति शोषित रूपसे रखी जावे जिससे भविष्यमें दिखाया जा सके कि किसी समय शोषक और शोषित किस प्रकारके थे" यह तर्क आजके युगमें नहीं चल सकता ऐसी जातियोंको सन्दूकचोंमें कबतक कोई वन्द रख सकेगा और कैसे रख सकेगा। मानव होकर यह सोचनेका किसीको भी अवसर नहीं है। इस प्रकारके हल जिनमें अमानवीय प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं एकदम विवेक शून्य हैं। विज्ञान ऐसे ही व्यक्तियोंके हाथमें जाकर विशिष्ट ज्ञान न रह सका वरन् विकारी ज्ञान हो कर मानवी सृष्टिका संहारक सिद्ध हुआ, जिससे आज भी विश्व जल रहा है। इससे मिलता जुलता हल उन लोगोंका है जो विज्ञानवादी भी हैं और समाज सुधारक भी। इस प्रवृत्तिके व्यक्ति सदैव दो मार्गोंके वीचका मार्ग खोजते हैं और पुराने कोटमें ही इधर-उधर चिथड़े जोड़कर यह सदैव सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं कि अव कोट नया हो गया और वह सभी प्रकारकी आपत्तियोंको सहन करनेमें समर्थ हो जावेगा। ऐसे व्यक्तियोंका अस्तित्व ही इसमें होता है कि वे अपने स्वार्थोंकी भी पूर्ति करलें और दोनों मार्गोंके पथिकोंके प्रिय भी वने रहें। ये चाहते हैं कि वनवासी जातियाँ अपने ही प्रयत्नों द्वारा विकसित हों; वाह्य प्रभाव उन पर किसी भी ओरसे न पड़े, किसी भारी परिवर्त्तनका उन्हें सामना न करना पड़े, स्वाभाविक क्रम-से सदी, दो चार सदीमें वे अपना शेष आवादीसे पूर्ण विलगाव रखती हुई। कूर्म गतिसे चलती रहें। वाहरकी किसी भी अच्छी वुरी शक्तिसे वे आन्दोलित न हों, समाजको जीवित रखनेवाली संघर्षमय परिस्थितियोंका इन्हें सामना न करना पड़े, कुछ सुधार भी होते चलें किन्तु वे उनके क्रमिक विकासमें व्यतिक्रम उत्पन्न न करें।" पता नहीं वह कौन सा क्रमिक विकासका सिद्धान्त है जो विना किसी प्राकृतिक संघर्ष तथा स्वभावगत क्रिया प्रक्रियाके समाजमें चला करता है। मानव सदैव अपने पड़ौसी वातावरण तथा संघर्षसे प्रभावित होता रहा है। प्राकृतिक संघर्षके विना कोई भी

---

[1] Dr. Hutton, Mr. Dracup etc.

समाज जड़ तथा गतिहीन भले ही हो जावे किन्तु उसका क्रमिक विकास नहीं हो सकत है। जीवन जीवनमय रखनेके लिए तथा जीवनकी सुरक्षाके लिए मानवको सदैव अपनी स्थितिके अनुसार वाह्य उपकरणोंसे संघर्ष करना पड़ा है। उस संघर्षमें वह सदैव ही अपने पड़ोसी वातावरणसे प्रभावित हुआ है। मानव समाज अपने चिर विस्तारकी आकांक्षामें ही आगे बढ़ा है—संकोचकी प्रवृत्तिमें विकास कैसा ? मानवका अभ्युदय सदैव सम्मिलनमें निहित रहा है न कि पृथक्करण तथा एकान्तकी उपासनामें। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय और विश्व बन्धुत्वकी कल्याणकर भावनाएँ अलग अलग सन्दूकचोंमें बन्द रक्खे हुए मानव समूहोंके बीच नहीं सोची जा सकती हैं; उनके समान अन्तर्मिलनमें ही मानवका सच्चा विकास हो सकता है।'[1] इन बिचले मार्गके शोधकोंको क्या यह पता नहीं कि अधिक चिथड़े चिपकानेसे कोट नया तो कभी नहीं हो सकता है, हां किसी समय ऐसा अवश्य हो सकता है कि वह अपना मूल अस्तित्व ही खो बैठे और फिर विभिन्न चिथड़ोंको भी आपसमें जोड़ना असंभव हो जावे तथा पुनः कछ सदियों पश्चात् वही कार्य फिर आप करने बैठें जो कि सदियों पूर्व ही कर सकते थे। कुछ सुधार भी हो कुछ प्राचीन गतविधि भी चलती रहे इससे दुर्बलताकी ही वृद्धि होती है। समाजमें कभी कभी यह चिथड़ेबाजी अविवेकपूर्ण जल्दबाजीके कारण होती है जिसका प्रभाव कभी भी श्रेयस्कर नहीं होता है। अतएव यह हल भी हमारे आज के युगके योग्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त पूज्य गांधीजीका हल उनके व्यक्तिगत जीवनका एक दर्शन है। उनका व्यक्तिगत 'हृदय परिवर्त्तन' वाला सिद्धान्त तथा कर्त्तव्य समझकर एकनिष्ठ हो योगीकी भांति शनैः शनैः दुःख दूर करनेके प्रयत्नमें रत रहना और सीधे संघर्षको सदैव समझौतेके सन्मुख बलिदान कर देना आदि व्यक्तिगत तपश्चर्यासे भरा हुआ होता है। समाजमें ऐसे कार्य सात्विक और श्रद्धाकी दृष्टिसे

---

[1] प्रसिद्ध भारतीय नृतत्व-वैज्ञानिक रायबहादुर ए० सी० रायने इसी पक्षमें कहा है कि:—'The contact of plain Bhuiya with neighbours of higher culture had not only led to some economic and social progress but also had impaired his primitive vitality and zest in life. Assimilating with neighbouring Hindus is always beneficial'.

पवित्र अवश्य कहे जा सकते हैं। कहीं कही पर उन्हें आंशिक सफलता भी मिल सकती है। किन्तु पूरे समाजको ध्यानमें रखकर इनसे कार्य नहीं चलता। समाजमें कितनी ही श्रेणियोंका स्वार्थ संघर्ष विद्यमान रहता है जो कि समझौतेके कच्चे डोरेमें सदैव बंधा नहीं रह पाता। समय असमय यह टूटते ही समाजमें व्यतिक्रम-उत्पपन्न कर देता है। कभी कभी उसका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ जाता है। अतएव गांधीजीका हल देवोंके समाजमें भले ही सम्भव हो किन्तु आजकी सामाजिक दशाओंमें उसका निरूपण नहीं किया जा सकता है। जहाँ समाजके पूरे उत्थानका प्रश्न होता है वहां विस्मृत सामाजिक तथा व्यापक प्रयोग संचालित करने पड़ते हैं, प्रत्येक स्थानपर व्यक्तिगत तपस्या काम नहीं देती है। बनवासी जातियोंका प्रश्न व्यक्तिगत उत्थानका या उद्धारका प्रश्न नहीं। वहाँ तो समाजके समाजको अन्धकार तथा चतुर्दिक गुलामीसे निकालना है। उनमेंसे दो चार ग्रेजएट उत्पन्न करके हमारा काम क्या सरल होगा? ऐसे सामाजिक उत्थानके लिए हम देशी रियासतों, व्यापारियों, वनियों, धर्मान्ध व्यक्तियों तथा सामन्तवादी शक्तियोंसे कव तक समझौता करेंगे, कवतक उन्हें प्रसन्न करेंगे, कवतक उनका हृदयमें परिवर्त्तन करेंगे। प्रत्येक कदम पर हम दो विरोधी केम्प खड़े देखते हैं। क्योंकि इन शक्तियोंका वनवासी जातियोंसे शोषक और शोषितका सम्बन्ध है। जिसकी जड़ 'जीवो जीवस्य जीवनम्' वाले दर्शन पर दृढ़तासे स्थित है। इन समाज विरोधी शक्तियोंसे जवतक संघर्ष न करना पड़ेगा तव तक बनवासी समाजकी मुक्ति कहां? इन जातियोंके समाजको उन कंटीली झाड़ियोंसे निकाल लानेके लिए यह अत्यावश्यक है कि उन कंटीली झाड़ियोंको ही नष्ट कर दिया जावे। अन्यथा धीरे-धीरे निकलते-निकलाते उस समाजका शरीर फिर कहीं रखने योग्य नहीं रह सकता है। गांधी वादी दर्शन ऐसे वर्ग-संघर्षको ठीक नहीं समझता और उसका 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त भी अव्यवहृत होता है। अतः यह कोई स्थायी हल नहीं कहा जा सकता है।

कुछ लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियोंका यह भी कहना है कि इन वनवासियोंको वनोंसे निकालकर या पहाड़ोंसे उतारकर मैदानोंमें वसाया जावे। क्या ऐसा कहनेवाले यह सोचते हैं कि 'अव क्या वन और पहाड़ी भूमि शून्य ही रक्खे जावेंगे—क्या मनुष्य उन्हें तिलांजलि दे देगा? अथवा क्या यह स्थान परिवर्त्तनका कार्य एक सुगम वस्तु है या मानवोंका स्थान-परिवर्त्तनके लिए माल असबावकी भांति

पार्सल किया जा सकता है ? क्या मानवका अपनी प्यारी भूमिके साथ कोई भी सम्वन्ध या लगाव नहीं होता है ? क्या आज तक अपनी जन्मभूमिके लिए उत्सर्ग होनेवाले मानव समूह तथा जातियाँ मूर्ख थीं या जड़ थीं कि अपने आपको हवन-की सामग्री समझकर जननी जन्मभूमिके रक्षार्थ किए गए महायज्ञोंमें अपने आपको झोंकती रहीं और इसपर अभिमान तथा गर्व करती रहीं ? क्या मानवका स्वभाव कीट पतंगवाले स्तर पर स्थित हैं ? पशु पक्षी तथा अन्य निम्न स्तरके जीव भी अपना आश्रय छोड़ने या विवशतः छुड़ाने पर क्षुब्ध और दुःखी होते हैं ? क्या आज सहस्रों वर्षोंसे महान् दुःखोंको झेलती हुई ये जातियाँ, प्राकृतिक वनैले उपादानोंको ही अपना सगा सम्बन्धी वनाकर रिश्ता कायम करके अपना जीवन शुष्क वाता-वरणमें भी सरस बनाकर तपस्या करती हुई ये जातियां केवल कहने मात्रसे सहजमें ही अपने चिर-परिचित स्थानोंको छोड़ देंगी ? आज भी इन वनैली जातियोंमें अपनी सूखी भूमिके लिए मर मिटनेकी साध वाकी है—उनके नित्यके जीवनसे ऐसा स्पष्ट प्रकट होता है कि उनमें अपनी भूमिके प्रति जितनी निष्ठा और श्रद्धा ओत प्रोत है उतनी हम अपनेमें कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अतः इस प्रकारके सुझाव हमारी अज्ञानता तथा विपरीत वद्धिके ही सूचक हैं। इतने वड़े जनसमुदायका परिवर्तन कर देना अथवा सोच लेनेसे अधिक अच्छा तो यही होता कि ऐसे मस्तिष्क-के प्रखर विद्वान एकान्त कमरेमें वैठकर या तो चन्द्रलोककी अपनी यात्राका वर्णन लिखा करें या परियोंके देशकी असंभाव्य कहानियाँ लिखा करें। जिससे उनके मस्तिष्ककी कसरत भी पूरी हो जावे और कभी कभी दूसरोंको भी मन वहलानेका साधन उपलब्ध होता रहे।

प्रश्न उठता है कि स्थायी हल क्या हो ? इसे निश्चित करनेके लिए हमें इन वनवासी जातियोंके जीवनकी स्थितिका भी ध्यान रखना पड़ेगा। जैसे यह सत्य है कि हम एक नितान्त अविकसित व्यक्तिको एकाएक विकासके सर्वोत्कृष्ट शिखर पर आसीन नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार इन जातियोंके साथ यकायक जादू हो जायगा इसकी भी संभावना नहीं हो सकती है। हाँ यदि हमारा दृष्टिकोण सही है और हमारा मार्ग सरल और सुन्दर है तो सफलता भी उतनी निश्चित हो जाती है। जहाँ यह अत्यावश्यकीय है कि हम इनके जीवनक्रमसे परिचित हों, वहाँ यह भी अत्यावश्यकीय है कि हम किस उद्देश्यके हेतु इनमें प्रवेश करना चाहते हैं। हमारे आजका युग समाजवादी विचारों एवं व्यवस्थाका युग है। हम चाहते हैं

कि मानव मात्र मानवीय आवश्यकताओंका उपभोग समान रूपसे कर सके तथा अपनी प्रकृतिके अनुसार विकसित करनेका अवसर पा सके। जो भी मानवस्तर उपलब्ध हो सके—उसमें उसे उत्साह और स्फूर्तिकी कमी न रहे। मानव सहयोग और प्रेमके महत्त्वको समझे तथा सुन्दर और स्वस्थ मानव परिवारकी कल्पनाका साकार रूप इस विश्वमें उपस्थित कर सके। इसका अर्थ है कि मानवको समान (विना किसी भेद भावके) आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण उपलब्ध हो सके। यह निश्चित है कि इस लक्ष्य द्वारा प्रेरित जो भी प्रयत्न होगा वह सामाजिक और व्यापक होगा, व्यक्तिगत न होगा। अतः हमारे कार्य करनेकी दिशा यह है। अब हमें यह जानना है कि इस ओर प्रेरित होनेके लिए इन जातियोंके जीवन क्रम हमें किस प्रकारकी प्रेरणाएँ दे रहे हैं और कौन सा उपाय सुगम है।

इन जातियोंका अध्ययन करनेसे यह निश्चित ज्ञात होता है कि:—

(१) सभी जतियाँ वन प्रदेशों तथा पर्वतीय प्रान्तोंमें रहती हैं; यहींसे किसी प्रकार अपना जीविकोपार्जन करती हैं। इनकी आर्थिक समस्याओंका हल इसी भूमिसे यदि खोजा जावे तो इनके लिए विशेष सुविधाजनक होगा।

(२) इन जातियोंमें सभीका कोई न कोई जातीय-संगठन है जिसके एक मात्र इशारेपर पूरे समाजका संचालन होता है—यही संगठन इनकी सामूहिक शक्तिका जीवन है। इस शक्तिका उपयोग ही इन्हें सामाजिक विकासमें द्रुततर गतिसे आगे ले जा सकता है।

(३) अधिकांशतः कठोर परिश्रमी, संकट झेलनेकी अपूर्व क्षमता रखनेवाले, सच्ची लगनवाले और निष्ठावान् तथा महान् श्रद्धालु होते हैं। ये ही गुण इन्हें रचनात्मक कार्योंकी कठिनताको भेदने तथा उसे पूरा करनेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

(४) सभी जातियोंमें एक सांस्कृतिक अथवा यूँ कहिए कि कलात्मक स्तर ऐसा पाया जाता है जिसपर ये अपने दुःखोंको निछावर कर डालते हैं और क्षण भरके लिए असीम सुखकी अनुभूति करते हैं। ये संस्कार उनके हाथकी दस्तकारी पूजा आदिके कार्यों तथा नृत्य और संगीतादि कार्योंमें भरे पड़े हैं। इनके हृदयका यही वह स्थल है जहाँसे मानवसे मानवमें संस्कृति तथा कलाका आविर्भाव होता है तथा अन्य मानवीय गुणोंका सूत्रपात होता है। कँटीले झाड़ झंकाड़ों तथा दुर्गम

पथोंमें ही इनकी अभिनय शालाएँ न जाने कितने आनन्दका स्रोत मुक्त रूपसे बहाती हैं जबकि सभ्य जगतको करोड़ोंकी संपत्ति इसी कलात्मक और सांस्कृतिक आनन्द की उपलब्धिके लिए व्यय कर देनी पड़ती है।

(५) सभी जातियाँ आर्थिक दृष्टिसे महान् दरिद्र हैं। जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति इनके लिए दुष्कर है अतः जब तक कोई भी योजना इनकी आर्थिक समस्याको हल नहीं करती तब तक इन जातियोंका उत्थान होना असम्भव है। इनके आर्थिक विकासका आधार ही इनमें जागृति और नवीन चेतना उत्पन्न कर सकता है।

आज हम देखते हैं कि विश्वकी सभी जातियोंके जीवनकी विभिन्न समस्याओंके बीच उनकी आर्थिक समस्या एक विशेष तथा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके साथ साथ अन्य समस्याएँ काफी दूर तक हल हो जाती हैं। इसे यह महत्त्व आजके जीवनमें और भी अधिक प्राप्त हुआ है। हमारी राष्ट्रीय सरकारके पास एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन अभी शेष है जिसका करना उसके लिए आवश्यक है। वह है—भारतीय उद्योग व व्यवसायोंका राष्ट्रीयकरण। प्रत्येक समाजवादी सरकारको यह कार्य करना ही होगा। इन्हीं उद्योगों व व्यवसायोंमें एक 'जंगल तथा वनैले प्रान्तोंका राष्ट्रीयकरण' भी है। इस योजनाको हम यदि आज वनवासी जातियोंके साथ रख कर देखें तो हमारा उपरोक्त प्रश्न लगभग हल हो जाता है। सबसे प्रथम इस योजनाको कार्यान्वित करनेका भार जन प्रिय सरकारपर होता है किसी व्यक्ति विशेषपर नहीं। द्वितीय इस राष्ट्रीयकरणमें योग देनेवाले जन समूहोंकी खोज करनी होती है दैवात् वह जन समूह सरकारको इन्हीं प्रान्तोंमें उपलब्ध हैं। बाहरसे भेजा गया जन समूह भूमि व वातावरणसे अपरिचित होनेके कारण पूरी योजनाको असफल भी कर सकता है, अथवा किसी वर्ग विशेषके स्वार्थ पर कार्यमें शिथिलता भी दिखा सकता है। तथा यह प्रबन्ध (बाहरसे व्यक्तियोंको इन वनोंमें भेजना) अधिक खर्चीला भी सिद्ध हो सकता है, किन्तु उन्हीं वनों और पर्वतोंकी इंच इंच भूमिको पहिचानने वाले, वहींके पशु पक्षियोंसे निशिदिन खेल खेलने वाले, उसी भूमिके शिखरों और वृक्ष व वनस्पतियोंसे रात दिन नाता जोड़नेवाले, वहींके पत्थर और कंकड़ोंको गिन गिन कर चलनेवाले, वहींके झील और जलाशयोंके पास पड़ौस चलने फिरने वाले लाखों सच्चे और परिश्रमी जन इन वनवासी जातियोंके अतिरिक्त कहाँ मिलेंगे जो इस महान् उद्योगकी

सफलताका भार स्वयं अपने दृढ़ स्कन्धों पर उठा कर सारे वनों और पर्वतीय प्रदेशोंकी उन्नतिमें लग कर इस वृहत् योजनाको कार्यान्वित करें। इनके समाजमें सहयोगकी प्रवृत्ति अधिकांशमें पाई जाती है। इस योजनाको यदि वनवासी जातियोंकी समस्याके हल स्वरूप सोचा जावे और उन्हें इसका फल मिले जिस पर इनका वास्तवमें जन्मसिद्ध अधिकार है तो ये दोनों समस्याएँ एक साथ ही हल हो जाती हैं और एक सुन्दर तथा सरल उपाय द्वारा हल हो जाती हैं। सौभाग्यवश जहाँ जहाँ ये वनवासी जातियाँ निवास करती हैं वे प्रान्त जंगल और वनोंके हैं जिनका सुप्रवन्ध सरकारको करना है और जिनकी आयु अभी कई सौ गुना बढ़ाई जा सकती है। अब हमें यह देखना है कि इस प्रकारके प्रान्तोंकी वनों और जंगलोंके दृष्टिकोणसे क्या अवस्था है तथा वहाँकी आयु बढ़ानेकी क्या क्या सम्भावनाएँ हैं:—

आसाम

इस प्रान्तमें वनवासी जातियोंके तीन निवास स्थान हैं: (१) पहाड़ी प्रान्त, (२) सीमान्त प्रदेश, (३) देशी रियासतें। ये तीनों भाग घने जंगलोंसे ढँके हुए हैं। यहाँ इन जातियोंकी आवादी २८ लाख २४ हजार १३३ है। ये लोग इन घने जंगलोंमें ऐसे घुसे हुए हैं जहाँ पर अभी तक कोई भी नहीं पहुँच सका है। इस प्रान्तके जंगलका रकवा २१ हजार ३६३ वर्ग मील है। इस जंगलसे कई प्रकारकी आय होती है। सन् १९४२–४३ में इस घने जंगलसे लकड़ीका उत्पादन ३ करोड़ ५० लाख घन फीट हुआ, जिसकी कीमत कई करोड़ होती है। यहाँके जगलोंमें वड़ी ऊँची ऊँची घास उत्पन्न होती है जिसका अभी तक कोई उपयोग नहीं होता। यदि इसका सदुपयोग किया जावे तो इस प्रान्तमें कई पेपर मिल खोले जा सकते हैं। यहाँ पर नाव आदि काष्टकी अन्य वस्तुएँ वनानेके सैकड़ों उद्योग चलाए जा सकते हैं। अन्य सहस्रों वनस्पतियाँ जिनकी अभी तक खोज भी नहीं हुई है हमारे राष्ट्रके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। गारो और खासी पहाड़ियोंमें उत्पन्न चायका वहुत वड़ा निर्यात यहाँसे होता है; जिसकी आयमें इन जातियोंका कोई हाथ नहीं है। ये चायके वग़ीचे अभी तक विदेशी व्यापारियों और मालिकोंके हाथमें हैं। यह प्रान्त चायका घर कहलाता है। लाखोंकी चाय यहाँ प्रति वर्ष

उत्पन्न होती है, किन्तु इस भूमिके वास्तविक स्वामियोंका इसके ऊपर कोई अधिकार नहीं। इसके अतिरिक्त इस प्रान्तकी पहाड़ी तराईमें ७१५२ वर्ग मील और २९४६३ वर्ग मील भूमि ऐसी पड़ी है जो या तो ऊसर है या कृषि योग्य नहीं है, किन्तु बनाई जा सकती है जिसका उपयोग सुयोजित राष्ट्रीय आर्थिक विकास-की योजनाएँ भली भाँति कर सकती हैं। इस प्रान्तमें सुन्दर नींबू तथा उसी प्रकारके जंगली फल अत्यधिक उत्पन्न होते हैं जिसकी ओर किसीका ध्यान नहीं। इस प्रान्तमें प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ रुपयेका पेट्रोल निकाला जाता है जिस पर पूर्णतया विदेशियोंका अधिकार है और जिसका उपयोग आसाम प्रान्त अपने आर्थिक विकासमें नहीं कर पाता है। जंगलकी अन्य छोटी-मोटी वस्तुओंका उत्पादन लग-भग ३९ हज़ार १५० रुपएका होता है। इस प्रकार यह जंगली प्रान्त आर्थिक दृष्टि-से कितना धनी है, किन्तु उस प्रकारके धन पर इन जंगलोंके मानवोंका कोई अधि-कार नहीं। इन जंगलोंको उत्पादन तथा आयकी दृष्टिसे यदि देखा जावे तो इस प्रान्तके २८ लाख मानवोंकी कोई समस्या ही नहीं रह जाती। ये जातियाँ इन जंगलोंकी आर्थिक योजनामें भली भांति खपाई जा सकती हैं और वे कतिपय वर्षोंमें ही सुसम्पन्न देखी जा सकती हैं। कमी है केवल ऐसे दृष्टिकोण की।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा

इन प्रान्तोंमें बनवासी जातियोंकी आबादी क्रमशः १९ लाख २५ हज़ार ४५७, ६१ लाख ९४ हज़ार ६२० तथा ३२ लाख ११ हज़ार २२३ है। इन तीनों प्रान्तोंका यह बनवासी इलाका बहुत कुछ मिला हुआ पड़ता है, अतएव इन पर एक साथ विचार करना आवश्यक हुआ। ये प्रान्त संथाल परगना, सिंहभूमि, राँची प्रान्त, सम्भल पुर, छोटानागपुरका पठारी प्रान्त, मयूरभंज रियासत, मानभूमि तथा उड़ीसा हैं। इनमें संथाल, मुंडा, ओराँव, हो, बोरहोर, भूमिज़ कोरवा, जवांग, पहाड़िया आदि कई नामकी जातियाँ निवास करती हैं। सौभाग्यसे इनके निवास स्थानकी यह भूमि भारतका प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र है, जिस पर सारे भारतकी व्यवसायिक उन्नति आज भी निर्भर करती है। इन बनवासियोंके प्रान्तोंमें कुल मिला कर २१ हज़ार ४५० वर्ग मील जंगल है। २१ हज़ार ५७६ व० मी० ऊसर भूमि तथा २४ हज़ार ५५५ व० मील भूमि कृषिके अयोग्य है।

जिसे कृषि योग्य बनाई जा सकती है यदि उचित सिंचाई तथा नवीन कृषिके आविष्कारोंका प्रयोग सरकार प्रारम्भ करे। इन प्रान्तोंकी अपार जलमयी नदियोंका पानी प्रतिवर्ष करोड़ों टन इन प्रदेशोंसे बहता हुआ निकल जाता है। यदि उसे संचित करनेके साधन बनावटी झील व तालाबोंके निर्माण हों तो उसी जलसे लाखों एकड़ भूमि सींची जा सकती है और कृषि योग्य बनाई जा सकती है। इन जंगलोंसे प्रतिवर्ष ३ करोड़ ४७ लाख ६३ हज़ार घन फीट लकड़ी बिक्रीके लिए निकलती है जिसकी कीमत करोड़ों होती है। प्रतिवर्ष यहाँसे ७ लाख ६४ हज़ार ७० रुपयेकी कीमतकी अन्य जंगली वस्तुएँ बेंची जाती हैं जो जंगलोंमें अपने आप उत्पन्न होती हैं। यदि इन जंगलोंका विकास तथा अन्य वस्तुओंका उत्पादन किसी सक्रिय योजनाके अनुसार किया जावे और वनवासी जातियोंका उसमें सक्रिय योग प्राप्त किया जावे तो इन जंगलोंकी आय कई करोड़ प्रति वर्ष बढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त हज़ारीबाग़, गया, मुंगेर और उड़ीसामें ४० हज़ार CWT. प्रति वर्ष अबरकका उत्पादन है जो लगभग २५ लाखकी कीमतका होता है। लोहा मयूरभंज, सिंहभूमि, क्योंझर तथा भारतवर्षमें सबसे प्रसिद्ध कोयलेकी खानें भी इसी भूमिमें हैं जिनसे प्रति वर्ष करोड़ोंकी आय होती है। किन्तु इन सभी उद्योंगोंसे यहाँकी वनवासी जातियोंको कोई भी लाभ नहीं होता है और न इस उत्पादनमें उनका कोई विशेष योग ही प्राप्त किया जाता है। यदि इन व्यक्तियोंको इस उत्पादनका कुछ भी लाभ मिले अथवा इस बातकी ओर ध्यान दिया जावे कि इन उद्योगोंमें इन जातियोंको खपानेका प्रबन्ध किया जावे तथा उनकी आयका सौवाँ भाग भी इनके उत्थानमें व्यय किया जावे तो इन जातियोंकी सामूहिक शक्तिके बल पर उत्पादन भी बढ़ सकता है। उत्पादन व्यय भी कम हो सकता है। उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थितिमें भी महान् क्रान्ति उपस्थित हो सकती है। पर प्रश्न यह है कि अभी तक उनकी ओर कुछ ध्यान ही नहीं दिया गया है। वरन् सर्वत्र उनका सीधा शोषण हुआ है। जो भूमि करोड़ोंकी सम्पत्ति प्रति वर्ष उत्पन्न करे उसी भूमिके ही वास्तविक संतान महान् दरिद्रता तथा दुःखके जीवन काटे! इससे बढ़कर और शोषण क्या हो सकता है? अभी तक इन जातियोंकी ओर इस प्रेरणाको लेकर सोचा ही नहीं गया। देशके सबसे समृद्ध प्रान्तमें सबसे अधिक दरिद्र मानव आज पशुओंका जीवन बिताते मिलेंगे। इस प्रान्तका पूरा शोषण व्यक्तिगत पूंजीपतियों द्वारा हुआ। औद्योगिक भूमिका उपयोग और

लाभ यहाँके निवासियोंको न मिले यह कोई भी समाजवादी विचारवाली सरकार सहन नहीं कर सकती है। इस भूमिके उत्पादन पर यहाँके निवासियोंका पूर्ण अधिकार है ऐसा मानने पर ही हमारा उत्पादन भी बढ़ सकता है और हमारा यह पिछड़ा हुआ समाज भी अभ्युदयकी ओर अग्रसर हो सकता है। यहाँकी वनवासी जातियोंकी समस्याको हल करते समय हमें इन उद्योगों व व्यवसायों तथा जंगलोंके राष्ट्रीयकरणमें इनका सहयोग अवश्य ही प्राप्त करना होगा और इसीमें उनका तथा सारे राष्ट्रका कल्याण है। इस भूमिका शोषण अब निरे परदेशी स्वार्थ पर ही निर्भर नहीं रह सकता है।

मध्यप्रान्त और बरार

यहाँ बनवासी जातियोंकी संख्या ३७ लाख ८ हज़ार ८९२ है। यह कुल आबादीका २० प्रतिशत भाग है। कुछ भागोंमें तो इनकी संख्या उन जिलोंकी आबादीके ½ भागसे भी अधिक है। जैसे मांडलामें ५९ फीसदी, वाड़ामें ३४ फीसदी, बेतुलमें ९ फीसदी, दक्षिणी चांदामें २२ फीसदी रामपुर, विलासपुर, उत्तरी जबलपुर, पश्चिमी होशिंगाबाद आदि स्थानोंमें ये पर्याप्त संख्यामें बसी हुई हैं। सम्भलपुर, कालाहंडी, सतपुड़ा, नागरा, जगदलपुर, नागपुर वर्धाके बीच, छत्तीसगढ़ तथा रायपुरके जंगलोंमें ये वनवासी जातियाँ अतीतसे रहती चली आ रही हैं। इस प्रान्तमें कोल, कुर्कू, भूमिया, बेगा, गादवा, कनवार, अघेरिया, गोंड, मेरिया, हल्वा, रवोढ आदि जातियाँ रहती हैं। आर्थिक दृष्टिसे ये सब दरिद्रता और दीनताके शिकार हैं। इस प्रान्तमें २४ हज़ार ७७७ वर्गमीलका जंगली प्रान्त है। इसके अतिरिक्त ७६५५ व० मी० भूमि कृषिके योग्य है जिस भूमिका आर्थिक दृष्टिसे उपयोग हो सकता है यदि नवीन साधनोंका प्रयोग जनप्रिय सरकार करे। इन जंगलोंसे प्रतिवर्ष ४ करोड़ ७४ लाख घन फीट लकड़ी बिक्रीके लिए निकाली जाती है तथा अन्य वनैली वस्तुओंसे प्रति वर्ष २० लाख २२ हज़ार रुपयेके लगभग आय होती है। इन जंगलोंको और भी विकसित किया जा सकता है। नवीन पेड़ों व वृक्षों तथा वनस्पतियोंका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस प्रान्तका गोंडवाना प्रदेश खनिज पदार्थोंके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण तथा विख्यात है। इस प्रदेशके इस विकासमें इन जातियोंका विशिष्ट योग प्राप्त

करना चाहिए ताकि वे अपनी भूमिकी सम्पत्तिसे अधिक लाभान्वित हो सकें। भारतवर्षका मेंगनीज़ धातुकी खानोंके उत्पादनमें से $\frac{3}{4}$ भाग इसी प्रान्तका होता है। ये खदानें छिन्दवाड़ा, जबलपुर, नागपुर, कालीघाट, मंदारा प्रान्तमें फैली हुई हैं। देशके औद्योगिक विकासमें इस प्रान्तका एक विशेष योग होगा। इस प्रान्तके वन भी अपनी लकड़ी तथा वनस्पतियोंके लिए विशेष धनी हैं। प्राकृतिक रूपमें बढ़े हुए ये वन यदि किसी आर्थिक योजनानुसार संचालित किए जावें तो इनकी वृद्धिका इस प्रान्तमें बहुत बड़ा क्षेत्र है। इस प्रान्तकी आर्थिक विकासकी परिधिमें इन वनवासी जातियोंकी आर्थिक समस्याका हल बड़ा ही सरल हो जाता है।

युक्तप्रान्त

इस प्रान्तमें दो विशेष स्थानोंपर बनवासी जातियोंका निवास है। दक्षिणी मिर्जापुर और देहरादून ज़िलेकी जोन्सर बावरकी घाटीमें। देहरादूनका स्थान जंगलकी दृष्टिसे विशेष सम्पन्न हैं। शीशम, सागवान, चीड़, देवदारुकी लकड़ीका यहाँ विशेष बाहुल्य है। यहाँका जंगली इलाका आयकी दृष्टिसे भी बहुत महत्वपूर्ण है। घाटी तथा तराईमें ऐसी बहुत सी भूमि है जहाँ पर उचित साधन प्राप्त होनेपर सुन्दर फलोंकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मिर्जापुरके दक्षिणी भागमें भी सोनके किनारे किनारे ऐसी ही भूमिका इस्तेमाल किया जा सकता है। रिहंडकी योजनासे सम्भवत: यह इलाका आर्थिक रूपसे विशेष विकसित होगा। इस योजनामें भी श्रम सम्बन्धी योग यहाँकी जातियोंको अवश्य प्राप्त करना चाहिए। यहाँकी वनैली उत्पत्ति भी पर्याप्त संख्यामें होती। खैर, सुपारी, कत्था तथा चिरोंजीकी उत्पत्ति यहाँ विशेषरूपसे बढ़ाई जा सकती है।

बम्बई

यहां वनवासी जातियोंकी संख्या २२ लाख ६७ हजार ७६ है। इनमें खानदेशके भील विशेष रूपसे सम्मिलित हैं। यहाँ पर जंगलोंका रकबा १३ हज़ार २५ वर्गमील है तथा यहां पर १३८८ वर्ग मील ऊसर भूमि और ८९४२ व० मील भूमि कृषिके अयोग्य है। यहां प्रतिवर्ष ४ करोड़ ६८ लाख १४ हज़ार घन फीट लकड़ीका उत्पादन होता है जो क्रय की जाती है। इसके अतिरिक्त २६ लाख ४६ हजार रुपयेके लगभग अन्य वनैली वस्तुओंसे आय होती है। यह आय और भी बढाई

आ सकता है। यह प्रान्त कारबार तथा व्यवसायके लिए विशेष विख्यात है किन्तु वनैले प्रान्तका कारबार अभी तक बहुत पिछड़ा है। इसमें इन वनवासी जातियोंका नियोजन विशेष लाभकर होगा।

मद्रास, नीलगिरी तथा ट्रावनकोर

इन प्रदेशोंमें वनवासी जातियोंकी संख्या सब मिलाकर लगभग ६ लाख ६५ हजार ७०० है। यहाँ पर जंगलोंका रक़बा लगभग २५ हजार वर्ग मील है। इन जातियोंका विशेष आश्रय इन्हीं जंगलों व पहाड़ियोंके अन्तर्गत है। केवल मद्रास प्रान्तके जंगली लकड़ीका उत्पादन १ करोड़ ७८ लाख ६६ हज़ार घन फीट है। अन्य वनैली वस्तुओंकी आय लगभग २ लाख १० हजार रुपया है। इसके अतिरिक्त नीलगिरी और ट्रावनकोरकी पहाड़ियों पर चाय पर्याप्त रूपसे उत्पन्न होती है। घास भी काफी मात्रामें पैदा होती है। समुद्री तटपर काफी मात्रामें (लगभग ६ लाख टन) नमकका उत्पादन किया जाता है। ट्रावनकोरमें कई प्रकारके कारबार चलनेके क्षेत्र उत्पन्न किए जा सकते हैं।

देशी रियासतें

वनवासी जातियोंकी काफी संख्या देशी रियासतोंमें रहती है। इनकी दशा किसी प्रकारसे अच्छी नहीं कही जा सकती है। ये अधिक दासतासे जकड़े हुए हैं। फिर भी इनका उद्धार किसी भी प्रकार यदि हो सकता है तो राष्ट्रीयसमाजवादी सरकारके दृढ़ निश्चय तथा राष्ट्रीयकरणके कार्योंसे ही हो सकता है। भारतकी देशी रियासतोंमें २६ हजार ८८० वर्गमील जंगल हैं तथा ३०१५३ वर्ग मील ऊसर भूमि और ४३ हजार ३७३ वर्ग मील कृषिके अयोग्य भूमि है। इनके समुचित विकाससे ही इस भूमिके निवासियोंकी भी आर्थिक समस्याएँ हल हो सकती हैं। देशी रियासतोंकी सामन्तशाही तो इन वनवासी जातियोंके लिए और भी अभिशाप सिद्ध हुई है। भारत स्थित जंगलोंके राष्ट्रीयकरणके साथ ही साथ इन देशी रियासतोंमें स्थित वनोंको भी सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए।

इस राष्ट्रीयकरणके साथ ही साथ इन वनोंमें बहती हुई नदियों, झीलों, तालाबों तथा अन्य वस्तुओंका भी आर्थिक संयोजन होना चाहिए। जिनके सहारे वनोंके विकासका कार्य सुविधापूर्वक चलाया जा सके। इन वनोंसे भारतवर्षको

प्रतिवर्ष अन्य वनैली वस्तुओंसे जो आय होती है यह लगभग ३ करोड़ ४७ लाख ९३ हजार रुपए प्रति वर्ष है। इन वस्तुओंमें प्राय: लाख, रबर, आँवला, चन्दन, इलायची, राल इत्यादि हैं। यदि इन वस्तुओंकी योजनानुसार वृद्धि की जावे तो ऐसी आय वेहद वढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त तेल, रेशे, रस्सियाँ, गोंद, कत्था, वनस्पतियाँ, मसाले, फल तथा घास आदि उत्पन्न करने व करानेके कार्य वड़ी आसानीसे इन जातियों द्वारा संचालित किए जा सकते हैं जो इन वनोंकी एक एक इंच भूमिसे परिचित हैं। इसके अतिरिक्त इन वनोंमें अच्छी लकड़ीवाले वृक्ष उगानेका प्रवन्ध तथा उगे हुए वृक्षोंकी जाँच पड़ताल करने आदिके काम इन जातियोंको सौंपे जा सकते हैं। ये सारे कार्य सरकारको किन्हीं न किन्हीं व्यक्तियों द्वारा करने ही पड़ेंगे। अतएव जंगलों एवं वनोंके विकास सम्वन्धी जो भी योजनाएँ वनाई जावें उनमें इस बातका विशेष ध्यान रहे कि ऐसे महत्त्वपूर्ण उत्पादन तथा प्रवन्धके कार्योमें वहाँकी चिर निवासी बनवासी जातियोंका किस प्रकार योग उपलब्ध किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप हम इस राष्ट्रीयकरणके साथ ही साथ उन लाखों वनवासी व्यक्तियोंको भी आर्थिक दृष्टिसे उठाकर मानवोचित स्तर पर ला सकें।

जव हम वनोंके राष्ट्रीयकरण तथा उनके विकासका प्रश्न हल करते हैं तव इस सिलसिलेमें जो भी साधन तथा सामग्री हमें इन वनोंकी ओर ले जाकर जुटानी पड़ेगी वे भी हमारी इन वनवासी जातियोंके उत्थानमें सहायक होंगी। सबसे प्रथम हमें घने वनों तक अपने यातायातके साधनोंको ले जाना पड़ेगा जिसके कारण हमारे देशके प्रत्येक स्थानका सम्वन्ध इन वनवासी जातियोंसे स्थापित होगा। उनका भी इस प्रकार आवागमन वढ़ेगा तथा वे शेष देशके रहन सहन, भाषा, व्यवहार, सभ्यता आदिसे परिचित होंगे और इस प्रकार वे सीधे सीधे सम्मिश्रण तथा प्रभावके क्षेत्रमें उतरेंगे। इस स्पर्श तथा पारस्परिक लेन-देनका प्रभाव उनके समाज पर अभिन्नरूपसे पड़ेगा। इस सामाजिक मिलनसे वे अवश्य आगे वढ़ेंगे, जागृति होगी, सामाजिक क्रान्ति तथा नवीन विचारों और संस्कारोंका प्रवेश होगा।

यातायातके साधन हमारी प्रत्येक प्रकारकी दूरीको निकटतम लानेमें पूर्ण सहायक तथा सफल होते हैं चाहे वह भौगोलिक दूरी हो अथवा सामाजिक या आर्थिक। जव हमारा और इन वनवासी जातियोंका सम्मिलन एक समान

आर्थिक आधार तथा पारस्परिक विनिमय और पारस्परिक अवलम्बन पर स्थित होगा तो न तो हम उनका शोषण करने पर उतारू हो सकते हैं और न उन्हें हमारी मनोवृत्तिसे किसी प्रकारका भय होगा। उनकी सांस्कृतिक तथा कलात्मक परम्पराका हमारे समाजपर प्रभाव पड़ेगा और हमारे साहित्य तथा रहन-सहन और जीवनके मापदण्डका इन पर प्रभाव पड़ेगा। यह हमारा सामाजिक सम्मिलन पारस्परिक स्नेहका होगा, असमान व्यवहार और विवशताका नहीं। हमारे गुण उनको सहर्ष ग्राह्य होंगे और उनके गुण हमारे लिए सौभाग्यकी वस्तु बनेंगे। हमारे और उनके सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्मिलनका आधार पारस्परिक समान आर्थिक स्थिति पर निर्धारित होगा। जिस आर्थिक आधारपर सारे संसारके श्रमिक एक हो सकते हैं, उसी आधारपर हमारे आजके असमान सामाजिक स्तर एक धरातल पर आवेंगे। यही एक मार्ग है कि हमारा आज अतीतसे आया हुआ बिलगाव हटेगा और हम सब पूर्ण नागरिक बन सकेंगे। इस प्रकारकी आर्थिक योजनाएँ ही वनवासी समाजको हमारे पास लानेमें समर्थ हो सकेंगी; केवल उद्धार चिल्लाने तथा दयाके दान पर चलाए हुए उद्धारके संगठनों द्वारा उनका उत्थान नहीं हो सकता है। आर्थिक योजनाएँ और उसका संचालन जन जागृति उत्पन्न करता है, क्योंकि वह पार्थिव जगतकी एक मात्र आवश्यकता होती है। इस आर्थिक आवश्यकताके सहारे सामाजिक परिवर्त्तन शीघ्र तथा अवश्यंभावी होते हैं। प्राणीके जीवनमें रोटी, कपड़ा, मकानका प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। उसके लिए किए गए व्यवस्थित तथा समान प्रयत्न अवश्य ही जीवनके अन्य व्यवहारों व क्षेत्रोंको निकटतम ला देते हैं और जीवनका प्रत्येक क्षेत्र तभी विकसित होनेका अवसर पाता है। अतएव यदि वनवासी जातियोंके उत्थानका प्रश्न गंभीरतासे सोचा और हल किया जा सकता है, तो यह प्रश्न उन्हींके स्थान, जन्म-भूमि तथा वातावरणसे हल होना चाहिए, जिसमें उन्हें भी विशेष सुविधा और सरलता हो। वनोंके राष्ट्रीयकरण तथा विकासका प्रश्न यदि किसी भी समाजवादी विचारवाली जनप्रिय सरकारको करना है तो क्यों न इस विशाल जनताका उस विकासमें पूरा पूरा योग हो, जिसका उन्हें उस भूमिकी एकमात्र संतान होनेके नाते पूर्ण अधिकार है। यह एक सुझाव है जिसके आधार पर इन दोनों प्रश्नोंका हल आसानीसे किया जा सकता है और तत्सम्बन्धी योजनाएँ विस्तृतरूपसे बनाई जा सकती हैं।

पिता के पत्र पुत्री के नाम

(स्कूल संस्करण)

लेखक : जवाहरलाल नेहरू

अनुवादक : स्व० मु० प्रेमचन्द

डी० सी० - २० प्वा० - १२८ पृष्ठ

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुत्री इन्दिरा को पत्रों द्वारा संसार का प्राचीन इतिहास वतलाया था। उन्हीं अँग्रेज़ी के पत्रों का यह हिन्दी में अनुवाद, उपन्यास-सम्राट स्व० प्रेमचन्द द्वारा, बच्चों के लिए इतना रुचिकर और उपयोगी सिद्ध हुआ कि इसके कई संस्करण हो चुके, और शिक्षा विभागों द्वारा पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी यह वर्षों से चला आ रहा है।

ज़मीन कैसे वनी, जानदार चीज़ें कैसे पैदा हुई, जानवर कब पैदा हुए, आदमी कव पैदा हुआ, तरह-तरहकी क़ौमें क्यों वनी, आदमियों की क़ौमें और ज़वानें, ज़वानों का रिश्ता, जातियों का वनना आदि आदि ऐसे कितने ही विषय हैं, जिनपर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है और जिनके जानने के लिए वच्चे वहुत जिज्ञासु रहा करते हैं।

वच्चोंको पुरस्कार में देनेके लिए, तथा पुस्तकालयों के लिए और प्रत्येक घरके लिए संसार का यह छोटा सा इतिहास वहुत आदर्श सिद्ध होगा। हिन्दी पढ़ना सीखनेवाले वच्चों और वुड्ढोंके लिए यह पुस्तक अत्यंत रोचक है।

केवल वारह आना

इलाहावाद लॉ जर्नल इलाहावाद



उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा पुरस्कृत   यात्रा और देश-दर्शन

हिमालय-परिचय-गढ़वाल

(मैप व चित्रों सहित)

लेखक : महापंडित राहुल सांकृत्यायन

डी० सी० - १२ प्वा० - ५६९ पृ० - कपड़े की जिल्द - दुरंगा कवर

उत्तर-प्रदेश सरकारने हाल ही में इस पुस्तक पर लेखकको १२००) का नक़द पुरस्कार प्रदान किया है। पुस्तक न केवल राहुलजी की ही वरन् समस्त हिन्दी संसारमें अपने ढंगकी एक ही है। राहुल जीका यात्रा-वर्णन न केवल मनोरंजक ही होता है वरन् ज्ञान वर्द्धक भी होता है। केवल रेफ्रेन्स बुककी तरह भी यह पुस्तक हिन्दीमें अमूल्य है। स्कूलों, कालेजों तथा पुस्तकालयोंके लिए यह अत्यंत आवश्यक संग्रह है। हिमालयके गढ़वाल खंडके विषयकी समस्त जानकारी—भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं साहित्यिक—से ओतप्रोत है और केदार, बद्री, गंगोत्री, मानसरोवर आदि की यात्राओंके लिए हिन्दी में सर्वोत्तम गाइड बुक है। गढ़वाल का नक्शा तथा बहुत से चित्र भी दे दिये गये हैं जिससे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। पुस्तक अत्यंत ज्ञान-वर्धक और संग्रहणीय है।

केवल दस रुपया

इलाहाबाद लॉ जर्नल इलाहाबाद

राजस्थानी रनिवास

लेखक : महापंडित राहुल सांकृत्यायन,

डी० सी० – १२ प्वा० – ३४६ पृष्ठ – आकर्षक कवर

'राजस्थानी रनिवास' में कुछ ही दिनों में विस्मृत हो जाने वाले तथा अपने प्रभुत्व के मध्याह्न में भी अत्यंत अपरिचित दुनिया का वास्तविक और विश्वसनीय चित्र खींचा गया है। कारागारसे भी कठोर नियंत्रण में वद्ध भारतीय सामंतों के अवरोध का जीवन कितना दुस्सह और अमानुषिक था, इसे आप यहां देख सकेंगे। रनिवासोंके कठोर जीवनके साथ यहां किसी देवतुल्य सामंत को भी देखेंगे, यद्यपि अधिकतर उससे उलटे ही मिलेंगे। राजस्थान के रनिवासों के विचित्र रीति-रवाज, पर्व-त्यौहार, वस्त्र-भूषा, खान-पान की वहुत-सी वातें भी यहां रोचक ढंगसे दी गई हैं।

इस पुस्तक के वारे में यह कहा गया है कि यह देर से लिखी गई क्योंकि राजस्थान में रहनेवाली जिन रानियों और ठाकुरानियोंकी वेवसी, दुख-गाथा और वहां के पुरुषों की स्वेच्छाचारिता का वर्णन किया गया है वह अव अतीत की वस्तु होने लगी है। राहुल जी उसका उत्तर यों देते हैं "इतिहास से विस्कृत होनेवाले इस जीवन का लिपिवद्ध होना जरूरी है ताकि इतिहास के प्रेमी उनके वारे में जान सकें।" साथ ही "स्वेच्छा से मालिक के अस्तवल के किनारे फेरा लगाने वाली मुक्त दासियों को इस पुस्तक से कुछ सहायता मिल जाये।"

इस पुस्तक में सभी स्थानों और व्यक्तियों के नामों को वदल दिया गया है। उसका कारण स्पष्ट है—"लेखक व्यक्ति को थोड़ा और सामन्त-समाज को ज़्यादा दोषी मानता है, इसलिए व्यक्ति का नाम देकर उसको मानसिक कष्ट पहुंचाने से कोई फायदा नहीं हो सकता। हो सकता है घटनाओं और व्यक्तियों के समीप रहनेवाले पाठक उन्हें पहचान जायँ।"

आदि से अन्त तक पुस्तक अत्यंत रोचक व ज्ञानवर्द्धक है।

केवल पांच रुपया

इलाहावाद लॉ जर्नल, इलाहावाद।

मानिनी गोपा

(एकांकी नाटक)

लेखक : हरिनारायण मैणवाल, एम० ए०

डी० सी० - १२ प्वा० - १०४ पृष्ठ - सुन्दर कवर

हिन्दी-साहित्यमें मैणवालजीके एकांकी एक नवीन टेकनीकका परिचय कराते हैं। इस पद्धतिपर प्रसूत नाटकोंका हिन्दीमें प्रायः अभाव है। इस दृष्टिसे यह संग्रह हिन्दी साहित्यमें अमूल्य है।

निम्नलिखित सात एकांकी इस संग्रहमें संग्रहीत हैं :—

मानिनी गोपा, अश्रद्धालु मानव, संत परीक्षा, सहशिक्षा, षड़यंत्र, नारी

केवल सवा रुपया

इलाहाबाद लॉ जर्नल इलाहाबाद